संस्कृत-विद्यापीठ-प्रकाशनमालायाः सप्तविंशं पुष्पम्

बुन्देलखण्डीय-'आनन्दराय'-महीप-सभापण्डित
श्रीनरहरिदीक्षित-सूनु-
पण्डित-कवि-श्रीसामराजदीक्षित-प्रणीतं

श्रीदामचरितम्

(नाटकम्)

श्रीलालबहादुरशास्त्री-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठम्

शहीद जीतसिंह मार्गः, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-११००१६

संस्कृत-विद्यापीठ-प्रकाशनमालायाः सप्तविंशं पुष्पम्

बुन्देलखण्डीय-'आनन्दराय'-महीप-सभापण्डित-
श्रीनरहरिदीक्षित-सूनु-
पण्डित-कवि-श्रीसामराजदीक्षित-प्रणीतं

श्रीदामचरितम्

(नाटकम्)

प्रधानसम्पादकः —
डॉ० मण्डनमिश्रः
मीमांसा-दर्शन-साहित्याचार्यः
एम० ए०, पी-एच० डी०, प्राचार्यः

मूलग्रन्थसम्पादकः —
प्रो० बाबूलालशुक्लः शास्त्री
एम० ए०, साहित्याचार्यः
मध्यप्रदेश-साहित्य-अकादमी-सम्मानितः
संस्कृत-प्राध्यापको विभागाध्यक्षश्च —
शासकीयस्नातकोत्तर-महाविद्यालयः, शाजापुर (म० प्र०)

सम्पादकः प्राक्कथनलेखकश्च —
डॉ ० रुद्रदेवत्रिपाठी, आचार्यः
एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०,
अनुसन्धान-प्रकाशन-विभागाप्रवाचकोऽध्यक्षश्च

श्रीलालबहादुरशास्त्री-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठम्
शहीद जीतसिंह मार्गः, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-११००१६

प्रकाशकः —
डॉ० मण्डनमिश्रः, प्राचार्यः
श्रीलालबहादुरशास्त्रीकेन्द्रीयसंस्कृत-विद्यापीठम्
शहीद जीतसिंह मार्गः, कटवारिया सराय, नई दिल्ली –१६
दूरभाषाङ्कः ६५०८३१

प्रथमं संस्करणम्
प्रतयः ५००

मूल्यम्— — — —

श्रीलालबहादुरशास्त्री-केन्द्रीय-संस्कृतविद्यापीठम्, नई दिल्ली

मुद्रकः —
वन्दना प्रिन्टर्स, दूकान नं०५- ६, बैंक स्ट्रीट, मुनीरका, नई दिल्ली ६७

प्रास्ताविकम्

श्रीसामराजदीक्षितप्रणीतं 'श्रीदामचरितं' नाम नाटकं सम्मुद्र्य प्रकाशयितुमिदानीं समुपक्रम्यते। एतस्य कवेः 'धूर्तनर्तकं' नाम प्रहसनमितः पूर्वमेव सम्पाद्य मया प्रकाशितमिति विदितमेव प्रज्ञावताम् । श्रीदामचरितं नाम नाटकमिदं श्रीसामराजदीक्षितस्य नाट्यसाहित्ये अपूर्वा कृतिरिति ज्ञास्यन्ति विमर्शकाः परिशीलनेन ।

एतस्य संस्करणमिदं नाट्यसाहित्यविमर्शकानां विद्वत्तल्लजानां करकमलेषु समुपस्थापयतो मे चेतः परमं प्रमोदमनुभवति । संस्करणमेतत् मातृकाद्वयसाहाय्येन प्रकाशनार्थं सज्जीकृतम् । तस्य चेदं विवरणम् : --

(१) उज्जयिनीस्थात् 'सिन्धियाप्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिरात्' प्रतिलिपिकृतं देवनागराक्षरलिखितं ५२ पत्रात्मकं 'अ' 'संज्ञकं पुस्तकं सम्पूर्णम् । अस्मिन् पुस्तके प्रतिपंक्ति ३६ अक्षराणि सन्ति । अस्य लेखनकालः पुष्पिकायां शाके १६४५ वत्सरे समभूत् इति अङ्कितं समुपलभ्यते । पुस्तकस्य आकारेणापि एतस्य समर्थनं लभ्यते एव ।

(२) अपरमसम्पूर्णं द्वितीयञ्च पुण्यपत्तनस्थ—भाण्डारकरप्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिरहस्तलिखितग्रन्थागारात् समुपलब्धं देवनागराक्षरलिखितं ७१ पत्रात्मकं 'ब' संज्ञकमसम्पूर्णम् । अस्मिन् पुस्तके प्रतिपत्रं ८ पङ्क्तयः प्रतिपङ्क्ति २० अक्षराणि सन्ति । एतस्य पुष्पिकाया अभावात् आकारेणापि 'अ' पुस्तकवदेव जीर्णत्वं दृश्यते ।

एतस्य 'श्रीदामचरितनाटकस्यापि' रचयिता श्रीसामराजदीक्षितः आसीद्यस्य '**धूर्तनर्तकं**' नाम प्रहसनं प्रकाशितमेव । तस्यैवोपोद्घाते एतस्य ग्रन्थकर्तुः स्थितिकालादिकं विलिखितमतो नेह तस्यैव पुनर्लेखनं प्रासङ्गिकमिति नेह वितन्यते । नाटकमिदं धूर्तनर्तकप्रहसनं निर्मायैव ग्रन्थकर्त्रा विनिर्मितमासीदिति ग्रन्थपरिशीलनेन स्पष्टमेव । श्रीदामचरितनाटकस्य निर्माणं १७८१ विक्रमवत्सरे (यद्वा १७२३ ईसवीयवत्सरे) समभूदिति विमर्शकानामैतिह्यविदां मतम् ।

एतद् श्रीदामचरितं नाम नाटकं भरतादिप्रणीतरूपकादिलक्षणानुसारि विचित्रतरकल्पनादिमण्डितमपूर्वमेवाप्रकाशितञ्च । एतस्य कथावस्त्वपि पौराणिकमाधारं गृहीत्वैव सन्दृब्धमिति सुस्पष्टं भवेदनुशीलकानाम् । परमत्र विशिष्टं विचित्रञ्च कल्पितं घटनाक्रमं कवेर्नाट्यकौशलं सुमहत् प्रदर्शयितुमलम् । अत्र सर्वत्र घटनानुरूपमेव क्वचित् दीर्घसमासशालिगद्यप्रयोगाः पद्यप्रयोगाः सानुप्रासाश्च शब्दविन्यासाः सन्दृब्धा वर्तन्ते । प्राकृतभाषाया अपि वैदुष्यं प्रौढमेव । अत्र शौरसेनीमहाराष्ट्रीपैशाचीप्रभृतीनां प्रयोगा यथास्थानं विहिता इति विमर्शका जानन्त्येव ।

अत्र छन्दसां प्रयोगनैपुण्यमपि विविधवृत्तप्रयोगैर्ज्ञायते। (यत्र दण्डकस्य भवभूतिमनुसृत्य विशिष्टः प्रयोगः कृतः कविनाऽनेन)। प्रकृतिवर्णनमपि कवेरसामान्यं कवित्वं प्रकटयति। अतः कवेरियं कृतिः प्रौढा सकलशास्त्रकलाभिज्ञत्वं प्रकटयितुं समर्थेति निश्शङ्कं कथयितुं शक्यते।

एतस्य सम्पादनकर्मणि साहाय्यमाचरद्भ्यः उपर्युक्तसंस्थानाधिकृद्भ्यः साभिनन्दनं धन्यवादम्। एतस्य प्रकाशनादिषु च परमं साहाय्यं कुर्वतां विद्यापीठस्य प्राचार्याणां डॉ० सी० आर० स्वामिनाथमहाभागानां तथा सुसम्पाद्य प्राक्कथनलेखनेन सम्भूष्य च शोधप्रभायां प्रकटीकुर्वतां डॉ० रुद्रदेवत्रिपाठि एम-ए०, पी० एच-डी०, डी० लिट्० महाभागानां सुहृत्तमानामपि चामन्दमुपकारभारमुद्वहन् धन्यवादाँश्चार्पयन् संस्मरामि सौजन्यम्।

एतस्मिन् संस्करणे प्रमादजातानि मुद्रणादिजातानि च स्खलितानि संशोध्य विद्वाँसः पाठकाः लाभान्विता भवेयुरस्य परिशीलनेन कुर्वन्तु च ममेमं श्रमं सफलमिति विनिवेद्यान्ते रमापतिमुमापतिश्च प्रार्थये यदेतत् नाटकं सहृदयमनस्सु परमां मुदमादधत् विलसतु। इति।

विदुषामाश्रवः
बाबूलालशुक्लः, शास्त्री

प्राक्कथन

संस्कृत नाट्य-साहित्य की विशाल मणिमाला में एक और अपूर्व तथा अब-तक अप्रकाशित "**श्रीदामचरितम्**" नामक नाटकमणि का संयोजन इस नाटक के प्रकाशन से हो रहा है, यह सभी साहित्यानुरागियों के लिये आनन्द का विषय है।

प्रस्तुत नाटक के उद्धार का श्रेय है— मध्यप्रदेश के संस्कृत-साहित्यसेवी एवं अनेक दुर्लभ-ग्रन्थों के उद्धार तथा सुसम्पादन में तल्लीन विद्वद्वर्य प्रा० श्री बाबूलालजी शुक्ल, शास्त्री, एम० ए०, साहित्याचार्य को जिन्होंने अतीव परिश्रम-पूर्वक उज्जैन तथा पूना के प्राच्यग्रन्थसंग्रहालयों से पाण्डुलिपियां प्राप्त करके उक्त नाटक का समुचित सम्पादन किया है।

संस्कृत-साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र-स्वरूप महान् कवि, सफल नाटक-कार एवं भगवतीत्रिपुरसुन्दरी के परम उपासक **श्रीसामराज दीक्षित** की यह कृति अपने विषय की विशिष्टता, नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के पूर्ण निर्वाह, अपूर्व कल्पना-सौष्ठव, विशिष्ट एवं विचित्र घटनाक्रम, विविध भाषा-प्रयोग, अलंकृत गद्य-पद्य-विन्यास तथा छन्दः-प्रयोग- प्रावीण्य आदि के कारण नाटक-साहित्य में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थिर करती है। इसी दृष्टि से साम्प्रतिक समीक्षा-सरणि का साह-जिक निर्वाह भी समुचित समझ कर हम कतिपय तथ्यों का परिशीलन प्रस्तुत कर रहे हैं, विश्वास है, पाठकगण इससे ग्रन्थकार एवं ग्रन्थ की गरिमा का कुछ आभास पा सकेंगे।

□ प्रस्तुत नाटक के रचयिता 'श्रीसामराज दीक्षित'

वंश एवं स्थितिकाल

संस्कृत-सरस्वती के समुपासक सामान्यतः सदा से ही आत्मख्याति के प्रति पराङ्मुख रहते हुए **'ममायं धर्मः, ममेदं कर्तव्यम्'** इस मङ्गलमयी भावना से अव्याज-मनोहर सारस्वत-सेवा में संलग्न रहे हैं। यही कारण है कि अनेक उत्तमोत्तम कविवरों के वंश, स्थितिकाल एवं कृतियों का कोई व्यवस्थित परिचय हमें प्राप्त नहीं है तथा इससे सम्बद्ध जिज्ञासा की पूर्ति के लिये विभिन्न साक्ष्यों (बहिःसाक्ष्य, अन्तः-साक्ष्य, ग्रन्थसाक्ष्य, परिवेशसाक्ष्य, किंवदन्तीसाक्ष्य आदि) का आश्रय खोजना पड़ता है, और उनमें भी अन्तिमेत्थं कहना तो नितान्त कठिन होता है, क्योंकि इस विशाल देश के

विभिन्न प्रदेशों के निवासी ऐसे उत्तम विद्वानों को अपना-अपना बताने में गौरव का अनुभव करते हैं, अतः तर्क-प्रतितर्कों की भी कोई सीमा नहीं रहती ।

यह हमारा सौभाग्य है कि महाकवि **श्रीसामराज दीक्षित** का परिचय; एक तो आसन्नकालिक होने से तथा दूसरा स्वकीयग्रन्थों में यत्र तत्र समुचित निर्देश होने से हमारे लिये न तो अज्ञेय है और न विवादास्पद ही है ।

हमें बहिःसाक्ष्यों से ज्ञात होता है कि—

(१) "वाराणसी में आज भी श्रीसामराजदीक्षित के वंशजों की एक शाखा निवास करती है, जो कि श्रीदीक्षितजी को बुन्देलखण्ड के नृपति **'श्री आनन्दराय'** के द्वारा समर्पित भूमि का स्वामित्व धारण करती हुई अपनी कुलोपाधि-**'बिन्दुपुरन्दरे'**, तदनन्तर **'चिरन्तनमोरवडीकर'** तथा **'बान्धवकर'** आदि में से अभी 'बान्धवकर' नाम से प्रथित है ।[1]

(२) श्रीदीक्षित मूलतः महाराष्ट्रीय ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे, यह उनकी और उनके वंशजों की कुलोपाधि से तथा वर्तमान पारिवारिक विद्वज्जनों से ज्ञात होता है ।

(३) ये प्रारम्भ में कहां उत्पन्न हुए और अध्ययन कहां हुआ ? यह कहीं से स्पष्टरूप से विदित नहीं हो पाया है, किन्तु इतना अवश्य है कि इनके यौवनकाल का उत्तरभाग तथा प्रौढावस्था का कुछ भाग बुन्देलखण्ड में वहाँ के नृपति, महादानी श्रीआनन्दराय की 'विद्वत्सभा' में प्रधान-पण्डित के पद को सुशोभित करते हुए व्यतीत हुआ था ।

(४) तदनन्तर भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना तथा परमसिद्धावस्था प्राप्त करके इन्होंने अपने वार्धक्यकाल में 'मथुरा' को ही अपनी आवासस्थली बनाई । यहां रहकर परिसर-वासी भगवती की कृपा-प्राप्ति के अभिलाषी भक्तों को उनकी योग्यतानुसार बाला, पञ्चदशी, षोडशी, महाषोडशी आदि की दीक्षा देकर उनका कल्याण किया तथा **'श्रीजी का मन्दिर'** और **'महाविद्या-मन्दिर'** आदि शक्तिपीठों की स्थापना की ।[2]

१–इस सम्बन्ध में पूज्यपाद श्री अमृतवाग्भवाचार्यजी से लेखक को संकेत प्राप्त हुआ है, क्यों कि वे उनके पूर्वाश्रम के पारिवारिक सम्बन्ध से अनुस्यूत थे ।

२- **'श्रीदामचरित'** की प्रस्तावना में सूत्रधार ने इस सम्बन्ध में कहा है कि—
सूत्र०— स्मरसि नरहरिदीक्षितसूनुना दीक्षितसामराजेन **आनन्दरायरञ्जनाय** श्रीदामचरितं नाम नाटकं...... । इत्यादि ।

अन्तःसाक्ष्यों से भी विदित होता है कि—

(१) श्री सामराज दीक्षित दाक्षिणात्य ब्राह्मणकुल में उत्पन्न **'बिन्दुपुरन्दरे'** कुलोपाधि से युक्त विद्वद्वर **श्री नरहरि दीक्षित** के सुपुत्र थे। अपनी पाण्डित्य-प्रतिभा तथा भगवती त्रिपुरसुन्दरी की अनन्य कृपा से ये भूमण्डल को भासित करते हुए बुन्देलखण्ड के महादानी शासक **श्री आनन्दराय** महाराज के आश्रय में **सभा-पण्डित** के रूप में बहुत वर्षों तक रहे।[1] विद्वानों के गुणातिशय का समादर करने तथा उदारता-पूर्वक दान देने में प्रख्यात[2] श्री आनन्दराय नृपति ने आपको जो भूमि और ग्राम-क्षेत्रादि उपहृत किये थे उनका स्वामित्व किसी न किसी रूप में आज तक श्रीदीक्षित जी के वंशजों के पास चला आ रहा है। मथुरा में **श्री बालकृष्ण जी दीक्षित** इसी परिवार के माने जाते हैं।

(२) श्री दीक्षितजी ने अपना उत्तरकाल मथुरा में व्यतीत किया था। आप एक महान् सिद्ध उपासक थे। श्री दीक्षित के अनन्य उपासक होने के कारण ही आपने अपनी कृतियों में दो स्तोत्र एवं एक प्रमुख पूजाग्रन्थ 'पूजारत्न' की भी रचना की थी। जो कई पटलों में विभक्त है। इस ग्रन्थ का महत्त्व आज भी उस सम्प्रदाय में अत्यन्त अधिक है। नवरात्रि की उपासना में उसकी पद्धति का आश्रय लेकर पूजाएँ सम्पन्न की जाती हैं।

(३) इनका दीक्षानाम **'सत्यानन्दनाथ'** था। इसी से ज्ञात होता है कि ये पूर्णाभिषिक्त थे, क्योंकि इस दीक्षा के समय ही आनन्दनाथान्त नाम तथा गुरु-पादुकाम्नाय का उपदेश होता है।

श्रीसामराज दीक्षित ने 'धूर्तनर्तकं' प्रहसन के सूत्रधार और नटी के संवाद के रूप में प्रस्तुत आरम्भिका में सूत्रधार के मुख से नान्दी के पश्चात् कहलाया है कि—"भगवान् नरसिंह की यात्रा के अवसर पर भूसुरों के समूह ने मुझे कहा है कि मैं श्रीसामराज दीक्षित प्रणीत धूर्तनर्तक प्रहसन का अभिनय कराऊं।" इत्यादि। तथा वहीं यह एक आर्या भी प्रस्तुत की है —

नरहरिकुलाब्धिचन्द्रो नरहरिमान्यो हि सामराजो यः।
नरहरिवन्द्यतनुश्रीर्नरहरिचरणाब्जरोलम्बः ॥४॥

---

(१) प्रस्तुत नाटक में ही नटी की यह उक्ति द्रष्टव्य है —
'नटी-अथ कः पुनः आनन्दरायो यस्य कर्णसदृशस्य त्रिभुवनजनकर्णप्राघुणिका कीर्तिः सः?' इत्यादि।

(२) इस सम्बन्ध में मथुरास्थित पं० श्री गोविन्दजी चतुर्वेदी, (दण्डी घाट स्थित) ने तथा पू० श्री अमृतवाग्भव आचार्य जी ने भी यही बताया है।

इसके आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि श्री दीक्षितजी ने उत्तरोत्तर उपासना-पर्याय में **'नृसिंह-सुन्दरी'** की उपासना भी की थी। श्रीविद्या के उपासक प्रारम्भ में अन्य देवता की उपासना करते रहें हों, तो वे अपनी इष्टदेवता की श्रीचक्र में ही पूजा करते हैं। तथा उसमें वे इष्टमन्त्र सहित पञ्चदशी अथवा षोडशी-मन्त्रगर्भ मन्त्र द्वारा उपासना करते हैं। इस दृष्टि से रामभक्त 'रामसुन्दरी,' कृष्णभक्त 'गोपालसुन्दरी', हनुमानभक्त 'हनुमत्सुन्दरी'[1] आदि के नाम से श्रीचक्र में यजन करते हैं। वैसे ही ये पहले लक्ष्मी-नृसिंह के उपासक रहें होंगे ?[2]

'किंवदन्ती-साक्ष्य' के आधार पर ज्ञात हुआ है कि वे ऐसे सिद्धपुरुष थे कि-उनके साथ एक सिंह रहता था और जब वे कोई यात्रा करते थे तो उस सिंह पर उनके द्वारा पूजनीय भगवती के श्रीयन्त्र को स्वर्ण-सिंहासन में विराजमान किया जाता था। इस तरह सिंह की सहोपस्थिति भी उनकी नरसिंह-भक्ति को व्यक्त करती है। परम्परया यह ज्ञात हुआ है कि उनका उपास्य स्फटिक निर्मित वह श्रीयन्त्र तथा पादुका आज भी कविवर श्रीगोविन्द चतुर्वेदीजी के परिवार में विद्यमान है।

यह निश्चित है कि श्री दीक्षितजी भगवती के पूर्ण कृपा-प्राप्त थे, तभी तो उनका प्रौढ पाण्डित्य उनकी रचनाओं में परिस्फुरित हुआ है। इन्हीं महा-पुरुष के विमल वंशदीपक आपके सुपुत्र श्री कामराज (१६८० से १७२० ई० के मध्य) हुए जिन्होंने संस्कृत-साहित्य में १- **'काव्येन्दुप्रकाश, २- रसनिर्णय, ३- चम्पक-मञ्जरी नाटिका, ४- नरहरिविजय नाटक तथा ५- शृङ्गार-लहरी'** आदि ग्रन्थों की रचना की। श्री कामराज दीक्षित भी श्रीविद्योपासक थे। आपने भी **'पूजा-रत्न'** जैसी अन्य पद्धति की रचना की थी, ऐसा सुना जाता है। इतना ही नहीं श्रीकामराज के पुत्र श्री हरदत्त (अपरनाम, व्रजराज,) दीक्षित ने **१—रसमञ्जरी व्याख्या २-शृङ्गारशतक, ३— सद्रत्नवर्णन, ४—आर्यात्रिशती सुक्तक'** आदि ग्रन्थों की रचना की। इसी प्रकार हरदत्त दीक्षित के पुत्र **श्री जीवराम** (अपरनाम ढुण्ढिराज) ने (जो कि माधवसेन राजा के सभापण्डित थे) भी १- **श्रीगोपालचम्पू** तथा २- भानुदत्त रचित **'रसतरङ्गिणी'** की **'सेतु'** नामक टीका का निर्माण किया था।

इस प्रकार एक संस्कृत-सेवक वंश के पूर्वपुरुष श्री सामराज दीक्षित का स्थिति काल सन् १६५५ से सन् १७५० के बीच का माना जाता है। इनकी कृतियों में क्रमशः "(१) **धूर्तनर्तकम्**, (२) **श्रीदामचरितम्**, (३) **त्रिपुरसुन्दरी - स्तोत्रं**, (४) **त्रिपुरसुन्दरीमानसपूजास्तोत्र**, (५) **पूजारत्न**, (६) **अक्षरगुम्फ**,

---

१- श्रीरामकृष्ण-परमहंस ने हनुमत्सुन्दरी की आराधना की थी, यह उनके चरित्र से ज्ञात होता है।

२- इसी नाटक के अंक २ और ३ में भी नृसिंहस्तुति के पद्य हैं।

(७) आर्या त्रिशती और (८) शृङ्गारामृतलहरी" ये आठ कृतियां प्राप्त होती हैं। इनमें क्रमांक ३ तथा ४ संख्यावाली कृतियाँ 'पूजारत्न' ग्रन्थ में भी हैं अतः कुल ६ रचनाएँ मुख्यतः इनकी हैं, ऐसा मानना उपयुक्त होगा।[1]

श्रीसामराज दीक्षित का वैदुष्य

श्रीदीक्षित की रचनाओं के अवलोकन से यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि ये विभिन्न शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान् थे। इनके द्वारा प्रणीत 'धूर्तनर्तक' एवं प्रस्तुत नाटक के प्रस्तावनांशों से ज्ञात होता है कि श्रीदीक्षित साहित्यशास्त्र, तर्कशास्त्र एवं मन्त्रशास्त्र के प्रौढ ज्ञाता थे तथा प्राकृत, शौरसेनी, महाराष्ट्री, पैशाची आदि भाषाओं पर भी पूर्णाधिकार रखते थे।

साहित्य-शास्त्र में अलङ्कार-विधान का अनुराग तथा गद्य-पद्य-निर्माण में अपूर्व कुशलता इनके कवित्व का मनोरम रूप है। वर्ण्य-विषय को अतिसूक्ष्म-चिन्तन-पूर्वक प्रस्तुत करने की कला एवं विशाल शब्दसागर का अवगाहन कर नये-नये पदार्थों के निरूपण की क्षमता यहां देखते ही बनती है; गद्यच्छटा में सभी प्रकार की गद्य-विधाओं का समुचित सन्निवेश तथा पद्य-विधान में छोटे-बड़े छन्दों का प्रयोग, लघु एवं दीर्घ समासों का समावेश, अनुप्रास-यमकादि शब्दालङ्कारों की झङ्कार तथा उपमा-रूपकादि अर्थालङ्कारों का अनुपम विन्यास प्रस्तुत कवि के शास्त्र-तत्त्व-निष्णात होने की पूर्णरूपेण अभिव्यञ्जना करते हैं। तभी तो कवि अपनी वचोमाधुरी की स्वयं प्रशंसा करने में सङ्कोच नहीं करता। सूत्रधार का कथन है कि —

तन्वते निर्वृतिं यस्य वाचो लोकस्य कर्णयोः।
रतिप्रमत्तवनिता-कङ्कणक्वाणमञ्जुलाः ॥३॥

वेल्लत्कल्लोलमालातटघटनमिलत्फेनसन्तानमूर्च्छत्-
क्षीरोदक्षोददीक्षावितरणपटवो यस्य वाचां प्रपञ्चाः।
केषां शेषाहिगौरा हृदयपटकुटीमेत्य साहित्यरज्ज्यत्-
सौहित्यानां रसानां विदधति न भरैः पूर्णमानन्दसिन्धुम् ॥

नाटक की पूर्तिरूप पुष्पिका में —

पायं पायमिमां भजन्तु कवयो नैलिम्पवृत्तिं भुवि,
स्फीता दीक्षित सामराजविदुषः सूक्तीः सुधास्यन्दिनीः। (५।२५ इत्यादि)

१- इनकी अन्य रचनाओं का भी कुछ अनुमान किया जाता है, किन्तु उस विषय में नामसाम्य ही हो सकता है, अतः यह गवेषणार्ह है। द्रष्टव्य— केटलागस केटलागरम्।

प्रस्तुत 'श्रीदामचरित' नाटक

नाटक का स्वरूप

प्रस्तुत नाटक में श्रीदामा (सुदामा) के चरित्र के आधार पर भगवान् श्रीकृष्ण की मैत्री एवं उसपर अपूर्व कृपा करने की सुप्रसिद्ध कथा को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पांच अंकों का यह नाटक भरतोक्त नाट्यशास्त्रीय लक्षणों से समन्वित है। प्रथम अंक में **'प्रस्तावना'** तथा द्वितीय और तृतीय अंकों में **'प्रवेशक'** का समावेश किया गया है। इसके संवाद सारगर्भित है किन्तु साथ ही वे प्रौढ गद्यों से अत्यधिक आक्रान्त भी हैं। सभी प्रमुख पात्र दीर्घ, दीर्घतर समास-सन्दब्ध गद्य के प्रयोग में बहुत ही निपुण प्रतीत होते हैं। सुमित्र और कनकचण्ड के संवादों में तो ये गद्यखण्ड बहुत ही विस्तृत हो गये हैं। पद्यों की रचना में भी गद्यात्मकता का पूरा आभास उपलब्ध है। दीर्घ-दीर्घ समस्त पदों के प्रयोग से स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, मन्दाक्रान्ता आदि छन्दों के पूर्वार्ध (दो चरण) बहुधा मण्डित हैं। वर्णनों में श्लेष, परिसंख्या, पूर्णोपमा और विरोधाभास का प्रयोग देखकर सहसा बाणभट्ट की कादम्बरी के गद्य का स्मरण हो आता है। कवि के शास्त्र-वैदुष्य एवं वैयक्तिक प्रतिभा के कारण 'नाटकान्तं कवित्वम्' की उक्ति को चरितार्थ करने में यह नाटक उत्तम प्रमाण उपस्थित करता है।

नाटक का नाम-सार्थक्य

नाटककार ने अपने नाटक का नाम **'श्रीदामचरितम्'** रखा है। श्रीदाम्नः चरितमधिकृत्य कृतं नाटकं 'श्रीदामचरितम्' यह व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है। पुराणों में भगवान् श्रीकृष्ण के परिकरों में श्रीराधाजी के भाई का नाम भी श्रीदाम है, उनके बाल्यसखा के रूप में श्रीदाम का उल्लेख है। सख्यभाव की साधना में श्रीदाम, सुदाम, सुबल आदि सखाओं को व्रजपरिकर में माना है तथापि यहां 'श्रीदाम' नाम का प्रयोग **सुदामा** के लिये ही माना गया है, यह स्पष्ट है। लगता है श्रीदामा के चरित के माध्यम से उनकी विद्वत्ता, निःस्पृहता, मित्रानुराग एवं भगवद्भक्ति के तत्त्वों को प्रस्तुत करना ही नाटककार को अभीष्ट था। अतः 'श्रीदाम-चरितम्' यह नाम सार्थक ही है।

नाटक का मुख्य प्रतिपाद्य

पूरे नाटक के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि नाटककार की मनोभावना मूलतः भगवद्भक्ति एवं भगवान् की कृपाकरणपरायणता का प्रतिपादन करने की रही है। संकट के समय स्थिरभाव से रहना, शास्त्रचिन्तन एवं ईश्वरचिन्तन में निःस्पृहभावना रखना तथा लौकिक कर्म में संसक्त रहते हुए भी जल-कमलवत् रहना मानवजीवन का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिये। 'राजवैभव तथा दीनावस्था के वैषम्य को दूरकर साम्य-स्थापन के आदर्श उदाहरण की प्रस्थापना' आज के सन्दर्भ में राष्ट्र

को प्रतिबोध देने में सर्वथा समर्थ है । उपकार का डिण्डिमघोष न करते हुए 'दायाँ हाथ दे और बायें हाथ को ज्ञात न हो' इसकी अभिव्यक्ति भी श्रीकृष्ण द्वारा द्वारिका में श्रीदामा को प्रत्यक्ष कुछ न देकर अपने आदेश से श्रीदामपुरी का निर्माण करवाना एक प्रभावपूर्ण दृष्टान्त है, जो कि कवि ने नाटक के माध्यम से प्रतिपादित किया है ।कृपा करने पर भी अहम्भाव का अभाव यहां व्यत है ।

नाटक का मूल वृत्त

अतिप्रसिद्ध ग्रन्थ 'श्रीमद्भागवतमहापुराण' के दशमस्कन्ध में महर्षि वेदव्यास ने दो अध्यायों में सुदामा के चरित से सम्बन्धित नाटकोक्त कथा का वर्णन किया है। यत्र तत्र कृष्णकथा के प्रसङ्ग से अन्य ग्रन्थों में भी इस प्रसङ्ग की चर्चा हुई है । हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के कवि भी सुदामा के चरित्र की प्रस्तुति में पीछे नहीं रहें हैं । किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि संस्कृत नाटक के क्षेत्र में श्रीसामराज दीक्षित ही ऐसे प्रथम टीकाकार हैं जिन्होंने श्रीदामा के चरित को नाटक के रूप में प्रस्तुत किया ।

संक्षेप में अन्य पात्रों की सहायता से विषय-वस्तु को प्रसंगोचित परिवेष में संकलित कर यथावसर कल्पना का पुट देते हुए मूलवृत्त को उज्ज्वल बनाया गया है । कथानक का सार इस प्रकार है —

दारिद्र्य अपनी पत्नी दुर्मति के साथ ब्रह्माजी के आदेश से मध्यलोक में निवास करने आता है और अतिथि के रूप में कुछ समय के लिये श्रीदामा के यहां प्रवेश करता है। दरिद्रता से आक्रान्त श्रीदामा और उसकी पत्नी वसुमती सन्तप्त हैं। वसुमती की सखियाँ नलिनी एवं कुमुदिनी उसे गौरीव्रत करने के लिये प्रेरित करती हैं। श्रीदामा भी दरिद्रता के कारण खिन्न होकर भगवान् से प्रार्थना करता है। वसुमती की स्वप्नवार्ता के प्रच्छन्न-श्रवण से ही श्रीदामा क्रुद्ध होता है जिसे सत्यकथन से वह शान्त करती है तथा स्वप्न की उत्तम फलद्रूपता के लिये भगवान् कृष्ण के पास जाने की प्रेरणा देती है। पहले तो श्रीदामा याचकवृत्ति की निन्दा करता है किन्तु मित्रदर्शन एवं प्रभुदर्शन की इच्छा से द्वारिका जाने के लिये तैयार हो जाता है। गन्धर्व रूपप्रिय और प्रियरूप के संवाद से श्रीदामा पर भगवान् की महती कृपा एवं अपने समान श्रीसम्पन्न बनाने की बात स्फुट होती है। श्रीदामा अपने शिष्य गालव के साथ द्वारिका में पहुंचते हैं, अपूर्व स्वागत होता है। तदनन्तर प्रमदोद्यान का विस्तृत वर्णन है । भगवान् अपनी पटरानियों के साथ हास-विलास करते हैं। विदूषक, श्रीदामा, और गालव भी उस लीला का अवलोकन करते हैं। यह वर्णन रासलीला का संक्षिप्त रूप है । प्रातःकाल होता है और सूर्यो-

दय के पश्चात् श्रीदामा जाने की अनुमति लेकर विदा हो जाते हैं। मार्ग में गालव श्रीकृष्ण द्वारा कुछ भी न देने की चर्चा करता है किन्तु श्रीदामा इस प्रसंग को 'अच्छा ही हुआ' यह कहकर टाल देता है। अपने गांव पहुचने पर दोनों देखते हैं कि पर्णशाला के स्थान पर महल बना हुआ है, दोनों विस्मित हो जाते हैं तभी कञ्चुकी आकर सारी घटना को स्पष्ट करता है। श्रीकृष्ण अपने मित्र से मिलने की इच्छा से विमान द्वारा श्रीदामपुर पहुचते हैं, वहां आर्या वसुमती एवं श्रीदामा रुक्मिण्यादि परिकर सहित श्रीकृष्ण का स्वागत करते हैं और भरत वाक्य के साथ नाटक पूर्ण होता है।

□ संस्कृत-भाषा एवं लोकभाषाओं में 'सुदामाचरित'

श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार

दशमस्कन्ध-उत्तरार्ध की ८० और ८१ वें अध्याय में **'श्रीदामचरित'** एवं **'पृथुकोपाख्यान'** के रूप में वर्णित कथा का सार इस प्रकार है —

ब्रह्मवित्तम, इन्द्रियार्थों में विरक्त, प्रशान्तात्मा, जितेन्द्रिय, यदृच्छालाभसन्तुष्ट एवं गृहाश्रमी एक ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्ण का मित्र था। उस कुचैल-(मैले वस्त्रवाले) की पतिव्रता पत्नी ने (अपने परिवार की स्थिति से खिन्न होकर) पति से निवेदन किया कि 'हे ब्रह्मन् ! आपके मित्र साक्षात् लक्ष्मी के पति, ब्रह्मण्य तथा शरण्य हैं। आप उनके पास जाएँ, वे आपको पर्याप्त धन देंगे।' वे अभी द्वारवती में हैं। वे बडे दानी हैं, अपना चरण-स्मरण करनेवाले को वे अपने-आपको भी दे देते हैं, फिर अर्थकामना की तो बात ही क्या ? इस प्रकार बहुत कहने पर वह भगवद्दर्शनलाभ के लिए उत्तम अवसर समझकर जाने को उद्यत हुआ। साथ में चार मुट्ठी चावल (पोहे) लेकर वह द्वारका पहुंचा। वहां भगवान् के महल में गया। भगवान् ने पर्यङ्क पर बैठे हुए दूर से उसे देखा और दौड़कर उसे दोनों भुजाओं में भर लिया। मित्र-मिलन के इस अपूर्व आनन्द से कृष्ण के नेत्रों से आनन्दाश्रु बह निकले। मित्र को पर्यङ्क पर बिठाया और पाद-प्रक्षालन करके चरणोदक को सिर पर लगाया। दिव्यगन्धलेपन किया, धूप, दीप, नैवेद्य, और ताम्बूल देकर स्वागत-वचन कहे।

अत्यन्त दुर्बल, कुचैल, एवं धमनी मात्र से शेष उस ब्राह्मण की साक्षात् देवी ने चँवर डुलाकर सेवा की। अन्तःपुर की स्त्रियों ने यह सब देखकर उस अवधूत के भाग्य को सराहा। तदनन्तर कृष्ण और उस ब्राह्मण ने परस्पर एक दूसरे का हाथ पकड़कर गुरु-कुल की ललित गाथाओं का कथन किया। साथ ही कृष्ण ने अपने मित्र की गृहस्थी तथा अपनी गृहस्थी की बात की। इस वार्तालाप में —गुरुपत्नी की आज्ञा से ईंधन लाने और जंगल में वर्षा होजाने तथा रात्रि हो जाने से सम्बन्धित बातें हुई। इसके पश्चात् प्रातः गुरुदेव सान्दीपनी के वहां खोजने के लिये पहुंचने पर उनकी प्रसन्नता एवं अयातयाम छन्दों (वेदों) के ज्ञान का आशीर्वाद उल्लिखित है। इनके साथ ही और बहुतसी ऐसी ही बातें

हुई । ब्राह्मण ने गुरुगृहवास के समय हुई कृष्ण की मैत्री से अपने भाग्य को सराहा और 'साक्षात् ब्रह्मस्वरूप कृष्ण का अध्ययन के लिए गुरुगृह में रहना एक विडम्बन ही था' ऐसा माना । यहां एक अध्याय पूर्ण हो जाता है ।

दूसरे अध्याय में श्रीकृष्ण कुछ मुस्कुराते हुए अपनी भाभी द्वारा भेजे गये उपायन (भेट) को मांगते हैं[1] । संकोचवश ब्राह्मण कुछ न कहकर नीचा मुंह किये चुप बैठा रहता है । तब भगवान् स्वयं अपने मित्र और उसकी पतिव्रता पत्नी की कामना को पूर्ण करने की इच्छा से उन पृथुकों की पोटली को खींच लेते हैं और 'अहो ! यह उपायन मेरे लिये भेजा गया है, यह मुझे बहुत प्रिय है, इन तण्डुलों से मैं और विश्व तृप्त हो जाएंगे' ऐसा कहते हुए एक मुट्ठी भरकर खागये और जब दूसरी मुट्ठी खाने लगते हैं तो लक्ष्मी उनका हाथ पकड़ लेती है । लक्ष्मी कहती है कि 'हे विश्वात्मन् ! इस लोक में अथवा परलोक में मनुष्य को सर्वविध सम्पत्ति प्राप्ति के लिये आपको सन्तुष्ट करने हेतु इतना ही पर्याप्त है ।' उस रात्रि में ब्राह्मण वहीं कृष्ण के महल में रहता है और स्वयं को स्वर्ग में रहते हुए के समान मानता है ।

दूसरे दिन कृष्ण से विदा लेकर चल देता है । मार्ग में चलते हुए भगवद्दर्शन एवं उनके द्वारा की गई शुश्रूषा का स्मरण करता रहा । मुझ पापी और दरिद्र को लक्ष्मीपति ने गले लगाया । जैसे भाई को अपने पलंग पर बिठाते हैं वैसे ही ब्रह्मण्य भगवान् ने मुझे पलंग पर बिठाया । उनकी पटरानी ने पंखा डुलाया, उन्होंने मेरे पैर दबाये, देवता मानकर मेरी पूजा की तथा सम्भवतः यह सोचकर कि यह 'दरिद्र मेरे द्वारा दी गई धनराशि को प्राप्त कर कहीं मद को प्राप्त न हो जाय, इस दृष्टि से मुझे धन भी नहीं दिया ।' यह सोचते-सोचते वह घर पहुंचता है किन्तु वहां तो कुछ और ही बन गया था । विशाल भवन, उद्यान, दास-दासियां, सभी तो थे । आश्चर्यान्वित ब्राह्मण को आया देख साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपिणी उसकी पत्नी बाहर आई, स्वागत किया, स्थिति समझाई । ब्राह्मण ने समझ लिया कि 'यह सब उसी प्रभु की कृपा का फल है, जिसने मेरे द्वारा लेजाये गये मुट्ठी भर चावलों को खाया था । ऐसे परमकृपालु भगवान् की भक्ति मुझे जन्म-जन्मान्तर तक प्राप्त होती रहे' ऐसी कामना की और अन्त में सद्गति को प्राप्त हुआ ।

श्रीमद् भागवत के अतिरिक्त अन्य पुराणों में – पद्मपुराण और ब्रह्माण्डपुराण में भी सुदामा के चरित्र का सामान्यतः वर्णन हुआ है । पौराणिक आख्यानों के आधार पर ही कृष्णचरित्र को पल्लवित एवं लालित्यपूर्ण पद्धति से प्रस्तुत करनेवाले कतिपय काव्यों

---

१. यहीं यह प्रसिद्ध भगवदुक्तिरूप पद्य आया है —

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।१०-८१।।भाग०

में भी इस सम्बन्ध में कुछ कहा गया है। विशाल संस्कृत-साहित्य की प्रवृत्तियों में व्याप्त स्तुतिसाहित्य में भगवान् श्रीकृष्ण की भक्तवत्सलता का जहां-जहां आख्यान हुआ है, उसमें भी सुदामा का स्मरण होता ही रहा है। दक्षिण के मूर्धन्य कवि श्रीवेदान्तदेशिक ने 'कुचैलमुनि' का स्मरण **'वैराग्य-पञ्चकम्'** के प्रथम पद्य में इस प्रकार किया है —

क्षोणीकोण-शतांशपालनकलादुर्वारगर्वानल—
क्षुभ्यत्क्षुद्रनरेन्द्र-चाटु-रचनां धन्यां न मन्यामहे।
देवं सेवितुमेव निश्चिनुमहे योऽसौ दयालुः पुरा,
धानामुष्टिमुचे कुचेलमुनये धत्ते स्म वित्तेशताम् ।। इत्यादि ।

□अन्य भारतीय भाषाओं में 'सुदामा-चरित'

हिन्दी भाषा के 'सुदामा-चरित'

हिन्दीभाषा में रचित सुदामा-विषयक आख्यानों की न्यूनता नहीं है। कवि श्री नरोत्तमदास, हलधर दास, भूधरदास, आलम, वीर वाजपेयी, गोपाल तथा वंशमणि आदि के 'सुदामा-चरित्र' रूप खण्डकाव्य इनमें महत्त्वपूर्ण हैं। आरम्भ के दो-तीन चरित्र तो हमारे 'श्रीदाम-चरित' नाटक से भी पहले लिखे गये हैं, अतः इनका परिचय तथा तुलनात्मक समीक्षण भी यहां आवश्यक प्रतीत है।

श्री नरोत्तमदास का जन्मकाल सन् १५५३ ई० माना गया है।[1] इसी प्रकार हलधरदास का समय भी इन्हीं के आसपास का माना जाता है।[2] ऐसी स्थिति में यह कहना असंगत नहीं होगा कि प्रस्तुत नाटककार की प्रेरणा के लिए इन दोनों कवियों के 'सुदामा-चरित्र' नामक काव्यों की उपस्थिति भी सहायक बनी होगी।

काव्यरूप की दृष्टि से श्री नरोत्तमदास का **'सुदामा-चरित्र'** एक अच्छा खण्डकाव्य है। इसमें कवित्त, सवैया, दोहा एवं कुण्डलिया आदि छन्दों का प्रासंगिक प्रयोग करते हुए काव्य-कला द्वारा विषय-सामग्री को लौकिक भित्ति पर सुदामा के चरित्र को प्रस्तुत किया गया है। नरोत्तमदास की प्रतिभा कथोपकथन की मार्मिकता का आधार लेकर नाटकीयरूप में खण्डकाव्य की प्रस्तुति से चमक उठी है। अधिकांश खण्डकाव्यों में वर्णनात्मक तत्त्व की ही प्रधानता रहती है, जब कि यहां संवादात्मक शैली को महत्त्व मिला है। जहां

१– श्रीग्रियर्सन द्वारा लिखित 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास,' अनु० किशोरीलाल गुप्त, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, पृ० ३३।

२– कुछ विद्वान् हलधरदास को नरोत्तम दास से भी पूर्ववर्ती मानते हैं। द्रष्टव्य-हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य : डॉ० सियाराम तिवारी, पृ० ३२५

कथा का इतिवृत्तात्मक वर्णन अपेक्षित था, वहां दोहा छन्द का प्रयोग **मर्मस्पर्शिता को बढ़ाता है। अलंकारों का सहज प्रयोग** तथा काव्योचित सौन्दर्य के साथ हृदय के उन्मुक्त भावों की अभिव्यक्ति उत्तम है तथा भाषा का प्रवाह अत्यन्त हृदयग्राही है। विषय की प्रस्तुतिगत मनोरमता के कारण श्री नरोत्तमदास के कतिपय छन्द तो हजारों नर-नारियों को कण्ठस्थ-से हैं। एक दो उदाहरणों से यह बात और भी स्पष्ट हो जाएगी। यथा —

सिच्छक हौं सिगरे जग को तिय !, ताको कहां अब देति है सिच्छा ?
जो तप कै परलोक सुधारत, सम्पति की तिनके नहिं इच्छा।
मेरे हिये हरि के पद-पङ्कज, बार हजार लै देखु परिच्छा,
औरनि को धन चाहिये बावरि, ब्राह्मण को धन केवल भिच्छा॥

□ □ □ □ □ □

सीस पगा न झँगा तन में प्रभु !, जानै को आहि, बसै केहि ग्रामा,
धोती फटी-सी लटी दुपटी अरु, पांय उपानह की नहिं सामा।
द्वार खड़ौ द्विज दुर्बल एक, रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा,
पूछत दीन-दयाल कौ धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा॥[1]

हलधरदास और भूधरदास ने अपने सुदामाचरित्रों में एक ही छन्द 'छप्पय' का प्रयोग किया है, जब कि आलम कवि ने 'ककुभ' छन्द को व्यवहृत किया है। वीर वाजपेयी ने विविध छन्दों में इस काव्य को ग्रथित किया है। इन कवियों ने सुदामा और ब्राह्मणी सुदामा पत्नी के चरित्र-चित्रण में यत्र-तत्र परिवर्तन और परिवर्धन करते हुए कथासूत्र को रोचक बनाने का पूरा प्रयत्न किया है।[2]

आन्ध्र भागवतकार पोतन्ना (पोतनामात्य, पोतराज) ने १५ वीं शती के निकट भागवतमहापुराण के चार प्रमुख भक्तों के वर्णन में 'कुचेल' (सुदामा) का वर्णन चिरन्तन भावानुबन्ध के साथ किया है। वहां कुचेल विद्या-विनयसम्पन्न ब्राह्मण है, कृष्ण का बाल्य-मित्र है तथा उनके चरित्र से यह अभिव्यक्त किया है कि भगवान् भक्तपराधीन हैं। सुदामा

१– इनके अन्य कुछ और पद्यों को हम तुलना में आगे प्रस्तुत कर रहे हैं।

२– द्रष्टव्य- (क) **सुदामा-चरित; नरोत्तमदास,** सं० बद्रीदास सारस्वत, साहित्य रत्न-भण्डार, आगरा।

(ख) **सुदामा-चरित्र; हलधर,** प्र० सं०, खड्गविलास प्रेस, पटना।

(ग) **सुदामा-चरित;** आलम, प्र० सं० नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

(घ) **सुदामा-चरित्र,** वीरवाजपेयी, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

के चरित्र को अनेक विलक्षण प्रसंगों से रोचक बनाया है ।

काश्मीरीभाषा के कवि 'राधास्वयम्बर' और 'शिवलग्न' आदि काव्यों के ख्यातिप्राप्त लेखक श्री परमानन्द (१९ वीशती) ने काश्मीरी भाषा में 'सुदामा-चरित्र' लिखा है ।

गुजराती में सुदामा के चरित्र को अधिक महत्त्व मिला है । इसका कारण यह हो सकता है कि – सुदामा गुजरात (सम्भवतः पोरबन्दर) के निवासी थे अथवा सौराष्ट्र के ही किसी ग्राम में इनका जन्म हुआ था । गुजरात के मनीषियों ने सुदामा के चरित्र-चित्रण में इन्हें 'अयाचित व्रती' कहा है । कथा-प्रसंग में कहा गया है कि ये जब द्वारका जाने को उद्यत हुए तो मील दो मील चलकर थक गये और किसी वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे, वहीं निद्रा आ गई । भगवान ने द्वारका में सोचा कि मेरा मित्र मुझसे मिलने आरहा है किन्तु वह अशक्त एवं दुर्बल है, द्वारका तक कैसे पहुंच सकेगा ? अतः गरुड को आदेश दिया और वे सुदामा को द्वारका ले आये पर इस रहस्य को सुदामा नहीं जान सके ।

श्रीकृष्ण के महल के समक्ष सुदामा खड़े हैं, द्वारपाल से श्रीकृष्ण से मिलने की याचना करते हैं किन्तु वे वहीं दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करना चाहते हैं । अन्त में अनुनय-विनय करने से वे कृष्ण तक पहुंचते हैं । विदा के समय कुछ देते नहीं, अपितु जो पीताम्बर पहनने को दिया था वह भी उतरवा लिया । और वहां सोने की द्वारका जैसी सुदामापुरी बना दी ।[1] इत्यादि ।

इस प्रकार भक्त और भगवान् के माहात्म्य को अनेक रुचिकर प्रसंगों से अभिव्यक्त किया गया है ।

मराठी में भी सुदामा से सम्बद्ध खण्डकाव्य और पद मिलते हैं । संक्षेप में यह कहना अत्युक्ति न होगा कि सुदामा का चरित भारत की समस्त लोक-भाषाओं में अंकित हुआ है और उसे अनेकविध नये-नये घटनाक्रमों से सजाया है, सँवारा है। चरित्र का रहस्यार्थ '**जीव की ईश्वर के साथ मैत्री** होने से जीव भी ईश्वर बन जाता है, यह बताया है ।

नेपाली भाषा में कृष्णनाथ सिग्देल, हरिहर लामिछा तथा दलबहादुर कार्की ने

१– कथाकारों द्वारा इसी चरित्र में अनेक नवीनताएँ प्रविष्ट हुई हैं यथा–जब भगवान् कृष्ण सुदामा के पैर धोते हैं, उस समय सुदामा के पैर में लगे हुए कांटे को देखकर रुक्मिणीजी सुई लाने गई किन्तु भगवान् ने सोचा कि यदि ब्राह्मण के पैर में सुई लगाऊंगा तो यह शूली के समान पापकारक होगा । अतः स्वयं अपने दांतों से उस कांटे को खींचकर निकाल दिया । इत्यादि ।

'सुदामा-चरित' के रूप में खण्डकाव्यों की रचना की है। इनके रचयिताओं में प्रथम दो कवियों ने **'सुदामा-चरित्र'** और तृतीय ने **'सुदामा को भाषा श्लोक'** ऐसे नाम दिये हैं। रचना गांधीयुग से प्रभावित होने के कारण तात्कालिक स्थिति के प्रभाव से पूर्ण है। जिस प्रकार 'कामायनी' की श्रद्धा ऊन और 'साकेत' की सीता सूत कातने की बात करती हैं, उसी प्रकार सिग्देलजी के सुदामा-चरित्र में पौराणिक सुदामा की पत्नी भी सूत कातने का उपक्रम प्रस्तुत करती है। वर्तमान का प्रतिबिम्ब इन नेपाली काव्यों में बहुत अच्छा उतरा है। उदाहरणार्थ 'सुदामा महल के चौकीदारों से डरता है कि कहीं वे पीट न दें। शासक वर्ग द्वारा जो धन का दुरुपयोग किया जाता है और धनी के पास जो दुष्प्रवृत्तियां बढ़ती रहती हैं उसका चित्रण सिग्देलजी की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है —

यो पूरा धनवान् छ यो धन लिने बारो बनाऊं भनी,
वेस्या चोरहरू प्रयत्न छलका गर्थन् करोड़ों पनी।
जेले सत्पथ बाट यो मन हटी भारी बिलाखी हुने,
सारा जीवन को छ सार जुन सो बर्बाद पारी दिने ॥[1]

सुदामा की आत्मग्लानि, पत्नी के प्रति खीझ, धन के प्रति अनास्था के उदाहरण भी अच्छे हैं। यथा —

जो बित्त ले आप्त हरू टुटाई, बर्बाद गर्द छ सदा झगड़ा लगाई।
लोकापवाद अति पार्द छ सुन्न नित्य, देखिन्न सो स्थिरपनी छ सदा अनित्य ॥[2]

श्रीलामिछा ने ब्राह्मणी के मुख से अपनी दीनता का जो वर्णन करवाया है, वह बड़ा ही रोचक है। यथा —

सदा तुन्दा तुन्दा पतरि भई सारी त तनकी,
बती तुन्नू मैले तवल पुगि गै एक मन की।
चोलीया की हाली कति कहनु यो बात् सरम की,
बिना खानू पीनू सब गरनु यो काम घर की ॥

इतना ही नहीं वह जहां भी सहायतार्थ जाती है लोग उसे तुच्छ दृष्टि से देखते हैं और वह उनके भाव समझकर लज्जावश कुछ कह भी नहीं पाती। इस असमंजस का चित्रण बड़ी सजीवता से इस प्रकार हुआ है —

जहां जान्छू ताहां दिदि बहिनिका काम करले,
आई माग्ली भन्या मन गरि त हैर्छन् नयन ले।

१– सुदामाचरित्र, कृष्णनाथ सिग्देल पृ० २३।
२- वही, 'भाषारत्न' से उद्धृत।

नयन भाषा बूझी केहि न भनी फिर्छ सरम ले'
कसोरी निर्वाहा गरनु मजिले यो करम ले ।।

दलबहादुर कार्की का 'सुदामा को भाषा श्लोक' अत्यन्त संक्षिप्त ढंग से वर्णित सुदामा का चरित्र है और इसमें काव्यकला का विलास और प्रातिभ प्रकृष्टता नहीं के बराबर है।

इसी प्राकर अन्य भाषाओं में भी सुदामा-चरित्र का विस्तार देखा जा सकता है, किन्तु विस्तार के भय से हम इतना ही पर्याप्त मान लेते हैं ।

नाटककार की रचना-शैली

संस्कृत भाषा में प्रणीत नाटक रस-प्रधान होते हैं। उसमें वास्तविकता अथवा कथावस्तु की यथार्थता की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना कि प्रेक्षकों अथवा पाठकों के हृदय में किसी रसविशेष के संञ्चार करने की ओर । कवि की विदग्धता केवल रसाभिव्यक्ति की पूर्णता में ही मानी जाती है। रस ही नाट्यकला का प्रधान लक्ष्य माना गया है। अतः नाटकों में प्रायः कथा को उसी के अनुसार ढालने की प्रवृत्ति सभी पूर्ववर्ती नाटककारों में रही है।

श्रीसामराज दीक्षित ने भी इस दिशा में यथासम्भव प्रयास नहीं छोड़ा है दारिद्र्य और दुर्मनि के संल्लाप में, श्रीदामा तथा वसुमती के संवाद में और श्रीकृष्ण एवं उनकी प्रमुख महारानियों के वाग्व्यवहार में यह पूर्णतः प्रतिफलित हुआ है । भारतीय नाट्यनिर्माण-प्रक्रिया के अनुरूप 'दुःख से आरम्भ हो कर सुख में जाकर सम्पूर्ति' का निर्वाह श्रीदीक्षित ने भो किया है।

पात्रों की संख्या भी प्रायः २० से अधिक ही है। दिव्य पात्र श्रीकृष्ण एवं रुक्मिण्यादि, अर्धदि व्यपात्र गन्धर्वादि, लौकिक पात्र श्रीदामा आदि का समायोजन प्रस्तुत नाटक में समुचित हुआ है। व्यक्तिगत चरित्र, वातावरण एवं समुदायगत चरित्र सृष्टि दोनों ही इसमें पर्याप्त कुशलता से समाविष्ट हैं साथ ही नाट्यशास्त्रीय परम्परा का अवलम्बन भी अच्छा व्यक्त हुआ है।

भाषा-प्रयोग में पात्रानुसारी भाषा का ही नहीं अपि तु वर्ण्य-विषय का भी चयन अच्छा हुआ है। स्त्रीपात्र एवं विदूषक शौरसेनी, महाराष्ट्री आदि का प्रयोग करते हैं । फिर भी उसमें साहित्यिक-सौन्दर्य का पुट पर्याप्त हुआ है। पुरुष पात्र प्रायः सभी विद्यानिष्णात एवं अपनी-अपनी रुचि की छाप अपने वाग्व्यवहार में व्यक्त करते हैं ।

कवि ने रसिकशिरोमणि श्रीकृष्ण के प्रकृतिप्रेम को प्रमदोद्यान के माध्यम से, तथा प्रातःकाल एवं सायंकाल के वर्णनों से अभिव्यञ्जित किया है । वर्णन की दृष्टि

सूक्ष्म एवं कल्पना-प्रवण है। बहुधा दृष्टान्त, और अर्थान्तरन्यास के द्वारा सूक्तियों तथा लोकमान्यताओं का प्रकट करते हुए पात्रों के मुख से लोकरञ्जन के साथ ही लोकशिक्षण की भावना को भी पुष्टि दी है।

नाटक का आरम्भ नान्दीवन्दन एवं प्रस्तावना में सूत्रधार और नटी के संल्लाप से हुआ है। नाटक की कथावस्तु तथा कवि के परिचय जैसी परम्परा का स्वीकार भी कवि ने किया है। इसी प्रकार प्रवेशक, स्वगतभाषण, नेपथ्य और भरतवाक्य भी इसमें सुनियोजित हैं। श्रीदामा के अतिप्रसिद्ध कथानक को पांच अंकों में प्रस्तुत करने के लिए बीच में कवि ने श्रीकृष्ण-लीला का भी आश्रय लिया है।

'प्रकृति की रमणीयता से नाटक की चारुता में अभिवृद्धि होती है' इस आशय से उपवन के वृक्ष, लताएँ, पशु, पक्षी आदि नाटक के सजीव अंग माने जाते हैं। इस दृष्टि से संस्कृतनाटकों में अन्तःप्रकृति के साथ ही बाह्यप्रकृति का सुन्दर एवं विशद वर्णन हुआ है। यद्यपि यहाँ ऐसे वर्णन में पूरी सूचियों का जो समुल्लेख हुआ है, वह नाट्य-मञ्च की दृष्टि से तथा प्रेक्षकानुभूति की दृष्टि से अनुपयोगी ही कहा जाएगा, किन्तु उसे हम द्वारिका के तत्कालीन महाराजा धिराज के प्रमद-वन की कल्पना के आधार पर समाहित कर सकते हैं।

'भवभूति ने अच्छे नाटकों का लक्षण देते हुए कहा है कि —

भूम्नां रसानां गहनाः प्रयोगाः सौहार्दहृद्यानि विचेष्टितानि ।
औद्धत्यमायोजितकामसूत्रं चित्राः कथा वाचि विदग्धता च ॥

(मालतीमाधव १/६)

अर्थात् 'विभिन्न रसों का प्रचुर एवं गहन प्रयोग, प्रीतिपूर्ण, रुचिर एवं कमनीय कार्य-कलापों का अभिनय, पराक्रम और प्रणय का चित्रण, विचित्र कथावस्तु तथा निपुण संवाद, (ऐसे लक्षणों से युक्त नाटक ही उत्कृष्ट माने जाते हैं।)

दशरूपककार धनञ्जय ने इसीलिये स्पष्ट किया है कि —

आनन्दनिःष्यन्दिषु रूपकेषु, व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धिः ।
योऽपीतिहासादिवदाह साधुस्तस्मै नमः स्वादुपराङ्मुखाय ॥

(दशरूपक १/६)

अतः आनन्दातिरेक की विशुद्ध अभिव्यक्ति ही नाटक- निर्मिति का फल है और वह श्रीदीक्षित के प्रस्तुत नाटक द्वारा सुलभ है, और यही कारण है कि प्रस्तुत नाटक की रचना शैली भी उत्तम बन पड़ी है।

वस्तु, चरित और रस-भावादि की दृष्टि से भी कवि ने नाट्य-शास्त्रोचित—पद्धति को नहीं छोड़ा है। श्रीदाम तथा श्रीकृष्ण दोनों ही अपनी-अपनी वैयक्तिक विशेषताओं से सामाजिकों को प्रभावित करते हैं। हां, इतना अवश्य है कि नाटककार दीक्षित नाटकीय औचित्य की अपेक्षा काव्य-कल्पनाओं की ओर अधिक झुक गये हैं किन्तु उन्हें नाटक के रंग में रंगने का पूरा प्रयास किया गया है। नाटकीय चरित्र की अभिव्यञ्जना सुदामा के कथनों में कितनी मञ्जुल एवं तत्त्वपूर्ण है।

अयोध्या वृत्तिश्चेत् षडरिनिवहैर्बोधमधुरा,
समायासौ काशी हरिकलनया नाथवचनात् ।
स काञ्ची संसारान् प्रतिपदमवन्ती परपदे,
कृतद्वाराऽस्माकं कथमिव न मोक्षोऽस्ति सुलभः ? ॥१।१५ ॥

"**मन चंगा तो कठौती में गङ्गा**' जैसी लोकोक्ति के अनुरूप ही दरिद्रता से खिन्न सुदामा अपने अकिञ्चन-जीवन में भी भगवत्स्मरण और सात्त्विक वृत्ति से सन्तुष्ट है। इस पद्य में 'मुद्रालंकार' के रूप में अयोध्या, मधुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्ती और द्वारवती आदि सप्तपुरियों का संयोजन अपने वैशिष्ट्य को पृथक् रूप से व्यक्त कर रहा है। श्रीदामा की तो सदा यही भावना रहती है कि —

किमधिकं नु सखे मम मानसे, विहरसे कृतहंसपदस्थितिः ।
परमुदञ्चतु मा हृदयान्तरे, तव कदापि हरे ! मम विस्मृतिः ॥ ४।४० ॥

और इसी लिये अपार वैभव प्राप्त हो जाने पर भी श्रीकृष्ण ने जब सुदामा को देखा तो वे बरबस कह उठे —

स्वाङ्गं गतस्पृहतया निगृहीतसत्त्वमङ्गं प्रपन्नविभवात् सरजोभियोगम् ।
तस्मादमुष्य शुचिशान्तविनिर्मितेव, संलक्ष्यते हरिविरञ्चिमयीव मूर्तिः ॥५।१६॥

श्रीकृष्ण इस नाटक में मुख्यतः रसिक एवं भक्तवत्सल के रूप में चित्रित हैं। वे विनोदप्रिय एवं प्रकृति के अनुरागी भी है। शिष्टाचार का उन्हें पूरा ध्यान है अपने जीवन की सामान्य से सामान्य घटनाओं का वे पूरा स्मरण रखते हैं। इसलिये सुदामा के मिलने पर अपने बीते दिनों की स्मृति दिलाते हुए कहते हैं —

वयस्य ! कच्चित् स्मरस्यावयोस्तत् —

अम्भोवाहविमुक्तवारिनिवहेनाप्लावितायां भुवि,
न्यञ्चद्वैद्युतवह्निविभ्रमविधिन्यस्ते समस्ते जने ।

आदेशादथ देशिकस्य दवतो दर्वीकरेणावृता—
न्येधान्यानयतोः कुतोऽपि समभूद् यत् कोऽपि कम्पक्रमः ॥३।१५॥

प्रमदोद्यान में प्रवेश करते ही श्रीकृष्ण शीतल पवन का वर्णन करते हुए उसे कामी की उपमा देते हैं (३।१६), सुमित्र द्वारा वनश्री के वैभव का आख्यान करने पर वे भी अपनी बहुज्ञता को व्यक्त करने में नहीं चूकते। मध्याह्न में वृक्षों के पास छाया का होना भी उनकी दृष्टि में प्रिया को उत्सङ्गित करना है —

छायापतौ समन्तात् करसञ्चारं कुर्वति दिशासु ।
उत्सङ्गयन्ति तरवो मुग्धवधूटीमिव च्छायाम् ॥३।१६॥

सूर्यास्त के वर्णन में भी श्रीकृष्ण का रसिक स्वभाव प्राची को तिमिराभिसारिका के रूप में देखता है (३।२८)। चन्द्रोदय के पूर्व अन्धकार को **'कुलटामोहनकलामहाध्वान्तस्कन्ध'** (३।२९) कहकर जगत् को व्याकुल करनेवाला बतलाना तथा चन्द्रोदय के विभिन्न कल्पनामूलक वर्णनों के साथ ही भामा, रुक्मिणी, जाम्बवती आदि के प्रति अनुराग का निदर्शन उनकी सरसता का उज्ज्वल प्रतीक ही तो है। यथा—

क्षणमाविष्कृतमाना क्षणमभिदृष्टप्रसादमाधुर्या ।
घनलयनिर्मोकवती शशाङ्कलेखेव मां हरति ॥४।२॥

अथवा

दन्तान्तरालिकास्ते श्यामलरेखा हरति मे चित्तम् ।
अधरसुधासम्बन्धादुदित इव शैवलारोहाः ॥४।५॥ इत्यादि ।

विदूषक, सुमित्र, गालव और कनकचण्ड का भी अपना-अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व यहां निखारा गया है। उनकी प्रत्येक उक्ति में काव्योचित कला का उन्मेष है, भणिति- भङ्गी का विभावन है तथा कथा-शैली का कमनीय विलास है।

स्त्रीपात्रों में नटी के गान के अतिरिक्त कहीं पद्य-प्रयोग नहीं है। प्रायः सभी संक्षिप्तवचनाएं हैं। हां, गद्य-प्रयोग में वे अपने वैदग्ध्य को व्यक्त करने में अवश्य सफल हुई प्रतीत होती हैं और उनका महिलोचित मार्दव भी अक्षुण्ण बना रहता है। इसी दृष्टि से दरिद्र की पत्नी और अन्य सखियां भी प्रबुद्ध हैं।

काव्यशास्त्रीय विशेषताएँ

'श्रीदामचरित' नाटक का कवि काव्यशास्त्र की सभी विधाओं से सुपरिचित तथा उनका सुप्रयोग करने में पूर्ण सक्षम हैं। शृङ्गाररस तथा प्रसङ्गानुसार अन्य रसों की योजना में भी प्रावीण्य दिखाने का पूरा प्रयास किया है। हास्यरस का परि-

पाक भी विदूषक की विचित्र उक्तियों में प्रायः झलकता है ।

अलंकारों का मनोरम सन्निवेश कवि श्रीदीक्षित ने बहुधा किया है । शब्दालङ्कारों में अनुप्रास पर विशेष मनोयोग प्रदर्शित हुआ है । यथा—

कुञ्चत् कल्पतरूणि मूकितगुरूण्यापन्न-वित्ताधिपा—
न्याक्रन्दद् रिपुवल्लभानि विदलद्ब्रह्माण्डभाण्डानि च ।
कम्पद् दिग्दयितानि रज्ज्यदबलान्याह्लादिबन्धुव्रजा—
न्याकुञ्चत् कमठानि यस्य चरितान्यामोदयन्ते जगत् ।।१।१७।।

यहां छेकानुप्रास तथा शतृप्रत्ययान्त शब्दों के प्रयोग से एक आकर्षक ध्वनि-साम्य की सृष्टि की गई है । इस प्रकार के नादसौन्दर्यवर्धक प्रयोगों में श्रीदीक्षित ने बहुत ही सफलता प्राप्त की है । यही अनुप्रास वृत्त्यनुप्रास के रूप में भी जहां उतरा है वहां बहुत ही अच्छे स्वरूप को लेकर बिखरा है । दण्डकरूप स्तुति की पङ्क्तियों में तथा प्रासङ्गिक अन्य गद्य एवं पद्यों में इसका प्रयोग द्रष्टव्य है—

(क) जयाकृष्टकण्ठीरवाकुण्ठवैकुण्ठलुण्ठाकदैतेय- कण्ठाटवीलोचनोत्कण्ठपाठीनवेषस्फुरत्कामठी०

(ख) देवदामोदरोदारदारारिरंसादरं सादरं साधयन् साधु० ।।२।२ ।।

(ग) उच्छलद्बहलवीचिनिचयचुम्बितचपलवेलादलदेलादलदलननागरः सागरः ।
(इत्यादि गद्य, ३ अंक)

यही प्रक्रिया श्रीदाम के समुद्र-वर्णन और द्वारका-वर्णन में तथा सुमित्र के प्रमदोद्यान के वर्णनों में अत्यन्त आह्लादकरूप से प्रस्फुटित हुई है ।

अत्यानुप्रास के प्रयोग भी यत्र-तत्र किये गये हैं । यथा—

मरुति धृतकदम्बे कैरवे तोयलम्बे,
क्षतजमधरबिम्बे पश्यति स्त्रीकदम्बे ।
दिनकृति न विलम्बे दत्तपद्मावलम्बे,
चरमगिरिनितम्बे चन्द्रबिम्बं ललम्बे ।।४।२६।।[1]

इस अनुप्रास को 'अष्टप्रास' भी कहा जाता है । इसी प्रकार गद्यखण्डों में ऐसे शब्दों के प्रयोग भी प्रायः दिखाई देते हैं, जिनमें एक ही प्रकार के अन्त्यवर्णों का आधिक्य है । (द्रष्टव्य सुमित्र द्वारा वर्णित प्रमदोद्यान-सम्बन्धी गद्यभाग ।)

१- ऐसा ही अन्य पद्य ४।३२ भी द्रष्टव्य है ।

यमक का प्रयोग बहुत कम हुआ है। श्लेष अलंकार भी एक-दो स्थानों पर ही प्रयुक्त हुआ है। यथा —

उपनिषद्गहने हरिरूपि यत्, प्रणवनाकतले हरिरूपि यत्।
दहरविष्णुपदे हरिरूपि यत्, किमपि धाम पुरो हरिरूपि यत् ॥३।६॥

यहां हरि शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थों का समावेश मननीय है।

अर्थालङ्कारों में उपमा-पूर्णोपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उल्लेख, निषेध, अर्थापत्ति, अर्थान्तरन्यास- विरोधाभास, परिसंख्या, अतिशयोक्ति, अपह्नुति आदि विभिन्न अलङ्कारों का प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण प्रेक्षणीय हैं —

उपमा — परागस्थगनाल्लुब्धवर्णा आमोदशालिनः।
हरन्ति हन्त सन्तापं सज्जना इव वायवः ॥३।३॥

पूर्णोपमा — काश्चनोत्का इव कलितोद्वेगाः, काश्चन कलहान्तरिता इव कलिकोपक्रमभाजः पुनर्मदनबाणासनातिमुक्तशिलीमुखभिन्नाः, काश्चन स्वाधीनपतिका इव प्रियालापसङ्गताः स्वच्छन्दकृतवृक्षारोहाः। (इत्यादि। ३ अं०, सुमित्रोक्ति)

रूपक — अस्तपातुकधर्मांशुकिरणारुणिताञ्चलम्।
वस्तेऽन्तराले तिमिरश्यामलं जगदम्बरम् ॥३।२२॥

उत्प्रेक्षा — विश्रामस्थानमिव मिहिकायाः, कुलगृहमिव वर्षायाः उत्पत्तिस्थानमिव चन्द्रालोकस्य, निर्वृतिपदमिव शीतजातस्य, आगारमिव शृङ्गारस्य० (इत्यादि ३ अंक०, सुमित्रोक्ति)

उल्लेख — आस्थानी सद्गुणनां निखिलनयवनी निर्गमो बोधसिन्धो—
रालानं श्रीकरेणोः कुलवसतिगृहं भारतीविभ्रमणाभ्। इत्यादि ॥१०॥

विरोधाभास – बिडौजसाप्यगोत्राभिदा, सुरूपेणापि धनदेन, महेश्वरेणाप्यनुग्रेण, जगत्प्राणेनाप्यप्रभञ्जनेन० इत्यादि (५ अं० कनकचण्ड की उक्ति)

परिसंख्या — यत्र च शूलसम्बन्धो योगेषु, गदाभियोगः पीताम्बरे, कपालित्वं शङ्करे, बलहानिरसुरेषु, क्षयप्रचारो भवनेषु, हस्तेन कन्यावयवाभिमर्शनं ज्योतिःशास्त्रे० इत्यादि (वहीं।)

बहुत से स्थलों पर ये ही अलङ्कार श्लेषपुष्ट होकर अथवा अन्यान्य अलङ्कारों से समन्वित होकर अङ्गाङ्गिभावसङ्कर भी बन गये हैं।

□अभिनव कल्पना और आधुनिक दृष्टि

श्री दीक्षितजी ने चमत्कृत उक्तियों और विभिन्न अभिनव कल्पनाओं के साथ ही कुछ आधुनिक दृष्टि को भी अपनाया है, जिससे नाटक के आयाम को नये अवदान भी उपलब्ध हुए हैं। श्रीकृष्ण जब व्योमयान द्वारा श्रीदामपुरी की ओर जाते हैं, तो मार्ग में कैलास-पर्वत भी आता है, वहीं शिव का निवास है। उनका शरीर जिसे विदूषक हिमगिरि-स्थित राक्षसों के खाने के लिये भात का ढेर बताता है— वह अर्धनारीश्वररूप है, अतः गजानन और कार्तिकेय जब माता का स्तन्यपान करना चाहते हैं तो एक स्तन के कारण उनमें परस्पर युद्ध होने लगता है, यह उक्ति विनोद के साथ अद्भुत भी है। यथा—

प्रेम्णार्धसङ्घटितयोः शिवयोः पुरस्तात् स्तन्यार्थिनौ द्विरदनाननकेकिकेतुः ।
एकस्तनाश्रयतयाऽहमहं पुरस्तादित्यद्भुताञ्चितशिवं मृधमारभेते ॥५।४॥

एक विभक्ति-चित्र और एक शास्त्रकाव्य का उदाहरण भी द्रष्टव्य है—

यस्त्राता जगतां यमाह निगमस्तत्त्वञ्च येनाप्यते,
यस्मै योगिजनो नमः प्रकुरुते यस्मात् परो नापरः ।
यस्यैतत्सकलस्त्रजीवभुजगो यस्मिन् जगद् दृश्यते,
सान्द्रानन्दमयः पुराणपुरुषः स्याच्चक्षुषोर्गोचरः ॥२।१०॥

यहां 'यत्' शब्द की सातों विभक्तियों के एकवचन के रूपों का प्रयोग 'विभक्तिचित्र' का द्योतक है। निम्नलिखित आर्या में छन्दःशास्त्र के नियमों का ग्रथन करते हुए विदूषक द्वारा किया गया श्रीदामा का स्वरूप-वर्णन भी मनोरम है—

यो न स्वभावदीर्घः परसंयोगान्न यो गतो गुरुताम् ।
छन्दःशास्त्र इवास्मिन्नन्त्योऽपि लघुर्गुरुः क्रियते ॥५।१३४॥

लौकिक आभाणकों और किंवदन्तियों को भी यहां अच्छा अवसर मिला है। भगवान् कृष्ण श्रीदामा से प्राप्त थोड़े से पृथुकों, को बहुत बताने के लिए कहते हैं—

प्रायः स्नेहभृता क्लृप्तमानन्त्याय प्रकल्प्यते ।
प्रसरत्यतिमात्रेण बिन्दुः पयसि सर्पिषः ॥३।१२॥

यहां घृतबिन्दु के पानी में गिरने से उसके चिक्कणांश के फैलजाने की बात कही गई है। नारी-सम्बन्धी प्राचीन धारणा की पुष्टि भी अधो लिखित पद्य में इस प्रकार हुई है—

हरन्ति सहसा पुंसां प्रज्ञया सह गौरवम् ।
कृत्वा लघूनिमान् भूयस्तृणवत् प्रक्षिपन्ति च ॥४।४३॥

गर्जति घनो न वर्षति वर्षति नो गर्जति प्रथितम् ।
जल्पति न चोपकुरुते जन उपकुरुते न जल्पति कदापि ।।५।१४।।

इस कथन से 'गरजै सो बरसै नहीं' इत्यादि उक्ति को व्यक्त किया है । ऐसी ही कुछ अन्य उक्तियों का समावेश अर्थान्तर-न्यास के माध्यम से भी हुआ है । जहां काल के बारे में कुछ कहा गया है, वहां काल को **कालहलिक** (३।३१) कहकर रविरथहल से अवकृष्ट तथा तिमिरौघ द्वारा समीकृत बताकर नभःक्षेत्र में नक्षत्र-बीजों का वापक (बोनेवाला) बतलाया है । वहीं 'तिमिरमयनीलवर्ण' में चित्र बनाता हुआ '**काल—चित्रकार**' है । कहीं **कालसमुद्धारक**' (५।३४) है तो अन्यत्र 'काल-मन्त्री' के रूप में व्यक्त है । सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, चन्द्रास्त, समुद्र, द्वारका-पुरी, गोपुर, प्रमदवन, हिमालय, कैलास और श्रीदामपुरी के वर्णनों में कविवर श्री दीक्षितजी ने गद्य और पद्य दोनों ही रूपों में अपने काव्य-कौशल को अद्‌भुत प्रतिभा के द्वारा मनोरम पद्धति स पुरस्कृत किया है ।

हिन्दी चरित्रों के साथ तुलना

उद्यान-वर्णन में हिन्दी के कवि हलधरदास ने अपने 'सुदामाचरित्र' में पुष्पों की एक सूची-सी प्रस्तुत की है । यथा—

केसरि कुसुम गुलाब केतुकी मालती बेली,
सेवति सुभग नेवार कुन्द नागेस चमेली ।
चम्पा करत बबंग बेलि लहरी अपराजित,
जूही मधुर सुगन्धराज सुनिपुष्प सुवासित ।
चन्द्रकला श्रीमल्लिका श्रीबसन्त सूरजमुखी,
सबै फूल फूले सुभग भ्रमर जुथ होते सुखी । (पृ० २३९)

सम्भवतः यह देखकर दीक्षितजी कैसे पीछे रहते ? उन्होंने भी वृक्षों की एक प्रौढ सूची उद्यानाधिकारी सुमित्र द्वारा अपने उद्यानस्वामी श्रीकृष्ण के सम्मुख प्रस्तुत करवा दी, जिसमें—

'**धनसार, पीतसार, त्वक्सार, सिन्दुवार, कोविदार, मन्दार, सहकार, कर्णिकार, शितिसार, जम्बीर, बाीर, करवीर, पाटीर, बीरपुर, खपुर, मालूर, खदिर, कदर और बदर**' जैसे १९ वृक्ष रान्त, '**ताल, तमाल, हिन्ताल, कृतमाल, नक्तमाल, कन्दराल, चलदल, दधिफल, जन्तुफल, निचुल, पिचुल, चतुरङ्गुल, मञ्जुल, वञ्जुल, मधुष्ठील, मधुल, गुडफल, विडुल, फेनिल, उद्दाल, कदली, लाङ्गली, लवली और शाल्मली**' आदि लान्त पदोंवाले २४ विविध वृक्षों के नाम तथा साथ ही अन्य १९ वृक्षों के नामों की सूची दर्शनीय है[1] । और इतने से ही सन्तुष्ट न होकर वहीं स्वयं श्रीकृष्ण,

१. द्रष्टव्य, गद्यांश, श्रीदामचरितम्, पृ २९ ।

साथी विदूषक, अतिथि सुदामा तथा गालव के द्वारा भी इसी क्रम में अन्य अनेक वनौषधि और पुष्प,-फलवती लताओं के वर्णन भी कर दिये हैं । इन्हीं वर्णनों में उत्प्रेक्षा, पूर्णोपमा, रूपक, परिसंख्या और विरोधाभास का भी पर्याप्त सहयोग लिया है ।

नरोत्तमदास ने सुदामा की पत्नी द्वारा—

महादानि जिनके हितु जदुकुल कैरवचन्द ।
ते दारिदसंताप ते रहे न किमि निरद्वन्द्व ।।

कहला कर द्वारका भेजना चाहती है, तो सुदामा—

कह्यो सुदामा वाम ! सुनु वृथा और सब भोग ।
सत्य भजन भगवान् को धर्म सहित जप जोग ।।

कहकर ब्राह्मण के धन के रूप में भिक्षा का महत्त्व दिखलाता है । जब कि यहां दीक्षितजी ने 'सकलदौर्गत्यगदागदङ्कार' श्रीकृष्ण के पास दारिद्र्यदुःख-निवारण के लिये प्रेरित करनेवाली अपनी पत्नी वसुमती को 'भिक्षा, मानवाले मानव के लिये छन्दोरीति के समान जिह्वालाधय से गुरु को भी लघु बनाने वाली' कही गई है, तथा—

कण्ठभूमौ मानजुषां याच्ञाप्रेरितचेतसा ।
पुरो निस्सरणे प्राणवचसोर्जायते रणः ।।२।६।।

इस कथन के द्वारा भिक्षा की बात मनमें आने मात्र से ही प्राण और वचनों में युद्ध आरम्भ हो जाता है कि— प्राण पहले निकलें कि वचन पहले ? ऐसा कहा है ।

भगवान् के यहां से विदा होने के पश्चात् मार्ग में सुदामा की मानसिक स्थिति का चित्रण श्रीदीक्षित के पूर्ववर्ती कवि ने —

घर घर कर ओड़त फिरे, तनिक दही के काज ।
कहा भयो जो अब भयो, हरि को राज समाज ।।
बालापन के मित्र हैं, कहा देउं में शाप ।
जैसो हरि हमको दियो तैसो लैंहे आप ।। (सु० च० पु० ५१.५२)

यह कहलाकर श्री कृष्ण के प्रति और—

हौं आवत नाहीं हुतौं, वाही पठयो ठेलि ।
कहिहौ धन सौ जाइके, अब धन धरो सकेलि ।।

तथा—

"जातहिं दै हैं लदाय लढ़ा भरि लैहों लदाय दई जियजानी" ।

और—

"द्वारका जाहु जू द्वारिका जाहु जू आठहु जाम यहै जक तेरे" ।

ऐसा कहला कर उनकी पत्नी के प्रति खीझ का प्रदर्शन किया है जब कि दीक्षितजी ने पहले सुदामा को आत्म-सन्तोषी और शिष्य गालव के द्वारा बहुत उकसाने पर कृष्ण को 'कृपण' कहकर ही सन्तोष मान लिया है। एतदर्थ निम्न दो पद्य दर्शनीन हैं —

पीतया मदिरया प्रमाद्यति, स्पष्टयैव धनसम्पदा जनः ।
तच्छमस्य परिपन्थिनीमिमां, सङ्गृहीतुमपि कः समुत्सहेत् ।।४।४०।।

बहुलाव्ययसमुदायादासादयतः कमप्यर्थम् ।
तुहिनपदतुल्यरूपात् कृपणादपि वेपते कायः ।।४।५१

तथा अन्तिम कामना भी श्रीदाम की यही है कि—

पर्यस्तं दौर्गत्यं पर्यस्तो मे शरीरसादश्च ।
कृपया कंसद्विषतो भवोऽपि पर्यस्ततामेतु ।।५।६१।

'श्रीदामचरित' में छन्दोविधान

काव्य के रसास्वाद में छन्दों का उचित प्रयोग भी अत्यन्त आवश्यक माना जाता है । भाव कैसे भी हों, गीतिमत्ता के आवरण में प्रस्तुत होने पर वे अधिक हृदयग्राही बन जाते हैं । आनन्दकारी, अभिप्राय-वाहक एवं रसप्रवाही छन्दों का प्रयोग काव्य के प्रत्येक अंग में समादृत है । कविवर श्रीसामराज दीक्षित भी इस प्रकार के छन्दोविधान में सिद्धहस्त हैं । प्रस्तुत नाटक में १५० से अधिक पद्य हैं और उनमें प्रायः २५ प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है । जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१- अनुष्टुप्	२६	८- द्रुतविलम्बित	३
२- आर्या	४५	९- पंक्ति	१
३- इन्द्रवज्रा	१	१०- पुष्पिताग्रा	७
४- उपजाति	९	११- पृथ्वी	१
५- गाहा	३	१२- प्रहर्षिणी	१
६- गीति	३	१३- भुजङ्गप्रयास	१
७- दण्डक	३	१४- मन्दाक्रान्ता	१

१५- मात्रिक (?)	१	२०- शार्दूलविक्रीडित	१६
१६- मालिनी	३	२१- शालिनी	१
१७- रथोद्धता	२	२२- शिखरिणी	४
१८- वसन्ततिलका	६	२३- स्रग्धरा	५
१९- वियोगिनी	३	२४- हरिणी	१

तथा २५–गद्यरूप दण्डक प्रभेद १

इनके पर्यालोचन से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृतकाव्यों में प्रयुक्त होनेवाले प्रायः सभी प्रकार के छन्द इनमें प्रयुक्त हैं और वे सभी अभिप्रायानुरूप विधान में सफल प्रतीत होते हैं ।

इस प्रकार यह नाटक सभी दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है । ऐसे उत्तम नाटक का प्रकाशन करने में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के निदेशक महोदय डॉ० रामकरण शर्माजी की सत्प्रेरणा तथा विद्यापीठ के प्राचार्य डॉ० मण्डन मिश्रजी का प्रोत्साहन सदा हमारे साथ रहा है अतः इन के प्रति कृतज्ञताज्ञापन करते हुए कामना करता हूं कि—

मातर्भारति ! वाङ्निधौ कति कति प्रत्नानि रत्नानि नो,
ग्रन्थानामिह सन्ति यानि बहुशो लुप्तानि लिप्तानि वै ।
लुप्तानां पुनरुद्धृतौ हृदि सदा निष्ठाऽस्तु तेषां तथा,
लिप्तानां च परिष्कृतौ भवतु मे प्रज्ञा ततस्तत्परा ।।

इत्यलं पल्लवितेन ।

होलिकोत्सवदिनम्
२०।३।८१ ई०

विद्वद्वशंवदः
डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी

 

पण्डित-कवि-
श्रीसामराजदीक्षित-प्रणीतं

श्रीदामचरितम्

(नाटकम्)

श्रीदामचरित'-नाटकस्य पात्र-परिचयः

पुरुष-पात्राणि

१- सूत्रधारः	—	नाटकीय-प्रयोगस्य निर्देशकः ।
२- दारिद्र्यम्	—	ब्रह्मणाऽदिष्टं मध्यमलोकावेक्षणार्थमुपेतं पात्रम्।
३- श्रीदामा	—	श्रीकृष्णचन्द्रस्य सखा ।
४- गालवः	—	श्रीदाम्नोऽन्तेवासी ।
५- गन्धर्वः रूपप्रियः	—	गगनयानेन भ्रमन् कश्चन गन्धर्वविशेषः ।
६- प्रियरूपः	—	रूपप्रियस्य सखाऽपरो गन्धर्वः ।
७- कृष्णः	—	भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रः ।
८- विदूषकः	—	श्रीकृष्णस्य नर्मसचिवः ।
९- प्रतिहारी पुरुषः	—	श्रीकृष्णस्य द्वारपालः ।
१०- प्रतिहारी	—	श्रीदाम्नो द्वारपालः ।
११- पुरुषः सुमित्रः	—	श्रीकृष्णस्य प्रमदोद्यानाधिकृतः पुरुषः ।
१२- पुरोहितः	—	अतिथि-सपर्यादिकारक आचार्यः ।
१३- कञ्चुकी	—	आर्याया वसुमत्याः सेवकः ।
१४- कनकचण्डः	—	श्रीदामपुर-परिचायकः कश्चन पुरुषः ।

स्त्री-पात्राणि

१- नटी	—	सूत्रधार-सहयोगिनी ।
२- दुर्मतिः	—	दारिद्र्यस्य पत्नी ।
३- वसुमती	—	श्रीदाम्नः पत्नी ।
४- नलिनी	—	वसुमत्याः सखी । (इयमेवैका)
५- कुमुदिनी	—	नलिन्याः सखी । (इयमेवापरा)
६- सत्यभामा भामा	—	भगवतः श्रीकृष्णस्य पत्नी ।
७- रुक्मिणी	—	भगवतः श्रीकृष्णस्य पत्नी ।
८- जाम्बवती	—	भगवतः श्रीकृष्णस्य पत्नी ।
९- राधा	—	भगवतः श्रीकृष्णस्य पत्नी ।
१०- माधविका	—	रुक्मिण्याः सखी ।
११- एका	—	सत्यभामायाः सखी ।

  

श्रीसामराजदीक्षितप्रणीतम्

श्रीदामचरितम्

(नाटकम्)

अथ प्रथमोऽङ्कः

(नान्दी)

जलधरसदृशे मुकुन्दवक्षस्यचिररुचिप्रतिभा[1]समुद्वहन्त्याः ।
हृदि कमलभुवः श्रियं वितन्वन् गरुडमणेर्हरताद[2]शर्म कृष्णः ॥१॥

(नान्द्यन्ते सूत्रधारः)

सूत्रधारः –– (विभाव्य)

चित्ते नित्यं चकास्तां नृपवर–रचनारम्भविध्वंसहेतु––
र्वेदान्तज्ञेयतत्त्वो बहुतरगहनामेयवृत्तप्रपञ्चः ।
यस्यामोघान् गुणौघान् कविवररचना वर्णितुं नैव शक्ता,
यं द्रष्टुं योगिपङ्क्तिः क्लमति[3] रसघनानन्दसन्दोहकन्दा ॥२॥

(परितो विलोक्य) अलमतिविस्तरेण । भो भो विकचनवनीलनलिनदल-कोमलकायकान्ति-संक्रान्ति-किर्मीरित-द्व्यष्टसहस्रगोपी-पीवर-कुचस्थलपुनरुक्तित-मृगमदपत्रस्य भङ्गुररुधिरमन(नो ?) मदचमूसमररसिकदितिजनिजनित-निधन - समेधित - धर्मकर्म - विधुतकलुषजगदवनमुदितमुनिजन - कृतपारायणस्य नारायणस्य यदुवंशावतंसस्य चरणनलिनमिलदमलजनानुसरदतिविपुल-धनलिप्सया मयि केनचित् सौभाग्यजुषा निक्षेप इवायमर्थः संस्थापितोऽस्ति यदभ्याशं सभ्यानामागतेन त्वया केनापि रूपकेण प्रमोदामोदितमनसो वयं विधेया इति । तत् प्राप्तावसरमनुतिष्ठ प्रियया सह कुशीलवैः सङ्गीतकम् । (परिक्रम्यावलोक्य च) अये ! अनाहूतैव विदितवृत्तान्तेव प्रिया गृहीततत्तद्भूमिकासम्भारा समुपस्थिता ।

---

१. प्रतिमा समु-ब० । २. हरताम् शर्म-ब० ३. क्रमति-ब० ।

(ततः प्रविशति नटी)

नटी —अज्जउत्त, णट्टप्पअदं विअ तुम्ह मणा दीसई ।
[आर्यपुत्र, नृत्यप्रवृत्तमिव युष्माकं मनो दृश्यते ।]

सूत्रधारः —प्रिये, पररञ्जना एव गुणा भवन्ति । यतः ––

अहृत्वा तरुणानीकमनांसि स्फुरतां वृथा ।
कुरङ्गाक्षीकटाक्षाणां दुर्लभा परमागता ।।३।।

अपि च––

विवेचिता गुणाभिज्ञैर्भूषयन्ति नरं गुणाः ।
परीक्षिता हि मणयः शोभां कामपि तन्वते ।। ४ ।।

तदमीषां विदुषामुपहारीकृत्य शोधयेयं तावन्निजगुणान् ।

नटी —ता किं पि अच्छि तारिसं रूवअं ? [तत् किमप्यस्ति तादृशं रूपकम् ?]

सूत्रधारः —(स्मृत्येव सहर्षम्) प्रिये, साधूपलब्धमेतेषां रञ्जकं प्रेक्षणकम् । स्मरसि नरहरि-दीक्षितसूनुना **दीक्षितसामराजेन** आनन्दरायरञ्जनाय **'श्रीदामचरितम्'** नाम नाटकं स्वयं विरच्य तदग्रेऽभिनेतुं मह्यमर्पितमासीत् ।

नटी —(क्षणं स्मृत्वा) को से सामराओ जेण धुत्तणट्टअं प्पहसणं कदुअ वअं णट्टाविदा ।
[कोऽसौ सामराजो येन **'धूर्तनर्तकं'** प्रहसनं कृत्वा वयं नर्तापिताः ।]

सूत्रधारः —अथ किम् ।

नटी —(सहर्षम्) अज्जउत्त, साहु साहु । तस्स पंडितकइणो मं वि सुहाअंति वाणीए गुंफो । [आर्यपुत्र, साधु साधु । तस्य पण्डितकवेर्मामपि सुखयन्ति वाण्याः गुम्फः ।]

सूत्रधारः —प्रिये, किं ब्रूषे मामपीति ।

वेल्लत्कल्लोलमाला तटघटनमिलत्फेनसन्तानमूर्च्छत्––
क्षीरोदक्षोददीक्षावितरणपटवो यस्य वाचां प्रपञ्चाः ।
केषां शेषाहिगौरा हृदयपटकुटीमेत्य साहित्यरज्यत्–
सौहित्यानां रसानां विदधति न झरैः पूर्णमानन्दसिन्धुम् ।। ५ ।।

नटी —तारिसो ज्जेव्व सो । अध को उण आणंदराओ जस्स कण्णसरिच्छस्स तिहुअण-जणकण्णपाहुणिज्जा कित्ती सो? [तादृशः एव सः । अथ कः पुनः आनन्दरायो यस्य कर्णसदृशस्य त्रिभुवनजनकर्णप्राघुणिका कीर्तिः सः ?]

सूत्रधार :—प्रिये, स एव कामाभिरामः ।

आकैलासप्रथमशिखरादासुवेलाचलान्ता–
दापौलोमी–विहरणगिरेराप्रतीचो दहार्यात् ।
विश्वे विष्वङ् मधुरशिशिरान् चञ्चलाकूणिताक्ष,
पायं पायं श्रवणपुटकैर्यद्गुणानुद्गृणन्ति ॥ ६ ॥

अपि च —

कुञ्चत्कल्पतरूणि मूकितगुरूण्यापन्नवित्ताधिपा––
न्याक्रन्द्रद्रिपुवल्लभानि विदलद्ब्रह्माण्डभाण्डानि च ।
कम्पद्दिग्दयितानि रज्ज्यदबलान्याह्लादिबन्धुव्रजा–
न्याकुञ्चत्कमठानि यस्य चरितान्यामोदयन्ते जगत् ॥ ७ ॥

अपि च––

आस्थानी सद्गुणानांनिखिलनयवनीनिर्गमो बोधसिन्धो–
रालानं श्रीकरेणोः कुलवसतिगृहं भारतीविभ्रमाणाम् ।
वापी वाणीसुधायाः सकलसुजनतामूलमद्रिः कृपायाः,
केलीसिन्धुः क्षमाया धवलयतितरां यः स्वकीर्त्या जगन्ति ॥ ८ ॥

अपि च ––

उत्फुल्लपद्मानि विहाय पद्मा–
सद्माकरोद्यन्नयनाम्बुजन्म ।
कुतोऽन्यथैतद्दलनेऽर्थिसार्थो,
दारिद्र्यनामापि सरीसरीति ॥ ९ ॥

(सहर्षमात्मगतम्)

नवरसरसिकः कविर्विनीतं,
भरतकुलं वयमात्तशास्त्रतत्त्वाः ।
चरितमपि हरेः प्रभुः कलावा–
नखिलमिदं सुकृतैर्ममाविरासीत् ॥ १० ।

(विलोक्य । प्रकाशम्) अये कुसुमश्रिया दूरं दैन्यं परिहृतं तरूणां सुरभिणा ।

तथा हि—

अफलितास्वपि भूरुहराजिषु,
प्रसवसौरभसक्तमधुव्रतान् ।
विरतमञ्जुलगुञ्जितविभ्रमान्,
फलधिया रसिकाः परिचिन्वते ॥ ११ ॥

नटी:—अहं वि सुरहिं वट्टावइस्सं । [अहमपि सुरभिं वर्धापयिष्ये]
(इति गायति)

चंदणगंधसुहेहिं दाहिणपवणेहिं रुक्खजादीओ ।
सुरहिज्जंदि वसंते संता कारेंति अप्पणो सरिसं ॥ १२ ॥
[चन्दनगन्धसुखैर्दक्षिणपवनैः वृक्षजातीयैः ।
सुरभीयन्ति वसन्ते सन्तः कुर्वन्त्यात्मनः सदृशम् ॥]

(सविषादहासम्) को उण अह्मदेण्णं परिहरिअ अप्पसारिच्छं करिस्सदि ।
[कः पुनरस्मद्दैन्यं परिहृत्यात्मसदृशं करिष्यति ।]

सूत्रधारः—प्रिये, अलं विषादेन ।

य अन्तरात्मा भूतानां देवदेवो जगत्पतिः ।
श्रीदाम इव नास्माकं दारिद्रयं स हरिष्यति ॥ १३॥

तदनन्तरकरणीयाय साधयावः ।

(इति निष्क्रान्तौ)

प्रस्तावना

(ततः प्रविशति दारिद्र्यं दुर्मतिश्च)

दारिद्र्यम्:—आदिष्टोऽहमस्मि तत्रभवतो भगवतो जगतो जन्मस्थितिलयहेतोः संसारसिन्धुसन्तरणसेतोस्त्रिभुवनजिष्णोर्विष्णोर्नाभीसरसिजयोनिना पद्मयोनिना—यद् वत्स दारिद्रय, त्वमितो गत्वा मध्यमलोकं स्वावेक्षणपरिरम्भणश्रयणादिभिस्ताँस्ताननुगृह्य तिष्ठेति । तदागत्यानुष्ठितो भगवतो निदेशः । तथा हि—मदधिष्ठितैरिदानीम् —

नीयन्ते पथिकास्यवीक्षणमिलद्याच्ञाकुराविर्भव—
दन्तव्रातधृतोरुकाकुवचनं रथ्यामुखे वासराः ।

किञ्चोदञ्चितशीतकुञ्चिततमःप्रत्यङ्गभस्मस्फुरत्–
कम्पं संयतजाठरानलबलं देवालये रात्रयः ॥ १४॥

(सोच्छ्वासम्) तदाश्रयाय स्थानमन्वेषयामि । (इति परिक्रामति)

दुर्मतिः––अज्जउत्त, तुम्हे लच्छीए पडिउला । कइं उण महुमहणस्स पिआ हुविस्संति । [आर्यपुत्र, त्वामपि लक्ष्मी प्रतिकूला । कथं पुनः मधुमथनस्य प्रियाः भविष्यन्ति ।]

दारिद्र्यम् ––प्रिये, महत् खलु रहस्यमिदम् । स्त्रीस्वभावसुलभलौल्यात् कदाचित् त्वत्तो नश्येदिति नाभिधातुमुत्सहे ।

दुर्मतिः ––(सश्लाघ्यम्) तुम्ह पडिपंथी कदा विजादो अअं जणो । [युष्माकं प्रतिपन्थी कदापि जातोऽयं जनः ।]

दारिद्र्यम् ––(सस्मितम्) दिष्टविनिष्टपक्षपातेषु धीरेषु ।

दुर्मतिः ––(सस्मितम्) तहिं घरिणीं सुमदि उज्झिअ सोहग्गम्हि । तुम्हेहिं तये रममाणेहिं अहं विसुमरिदा । [तदा गृहिणीं सुमतिं त्यक्त्वा सौभाग्यं गतास्मि । त्वया तया रममाणेनाहमपि विस्मृता ।]

दारिद्र्यम् ––(साशङ्कम्) न खल्वेवम् । किन्त्वकाण्डलब्धायास्त्वत्परिपन्थिन्या निग्रहे यदितर-स्माभिर्न त्वमाहूता । तदलमनागसीह कोपबन्धेन ।

दुर्मतिः ––रहस्साइं ढक्कंतेसु तुम्हेसु कहं ण कुप्पिस्सं । [रहस्यानि छादयत्सु भवत्सु कथं न कुप्ये ।]

दारिद्र्यम् ––प्रिये, किन्तवास्त्यकथनीयम् । शृणु । श्रियोऽप्यहं प्रियो मधुसूदनस्य । यतः स्वानुगृह्येषु तूर्णमपहृत्य रमां मामेव नियोजयति । ततो वैराग्यादय आगत्य मामुपजीव्य व्यतितिष्ठन्ते ।

दुर्मतिः ––तेसु आअदेसु मह कहं वावारो ! [तेष्वागतेषु मम कथं व्यापारः ।]

दारिद्र्यम् ––यातेषु महितेषु तेषु कुलयोषिदाचारविदुष्यास्तव स्वत एव व्यावर्तते व्यापारः ।

दुर्मतिः —कधं अध रमाए चिठ्ठंतीए तुम्हाणं प्पवेसो पकिदिसु । [कथमथ रमायास्तिष्ठन्त्या युष्माकं प्रवेशः प्रकृतिषु ।]

दारिद्र्यम् ––प्रिये, त्वमेव तत्र द्वारम् ।

दुर्मतिः ––कहं विअ । [कथमिव] ।

दारिद्र्यम् —त्वमादौ हृदयानि श्रीजुषां प्रविश्य कर्मस्वनास्थां जनयन्ती पापादौ प्रवर्तयन्ती तानि, अद्य यथेष्टचेष्टाप्रवृत्तेषु तेषु स्वत एवोद्विग्ना रमा तान् जहाति। ततो मम सुलभ एव प्रवेशः। इति।

दुर्मतिः —(सगर्वम्) णं अहं सिरीए उव्वावरी हुवीअ तुम्ह प्पवेसे कारणं होमि। [नन्वहं श्रिया उच्चाटिनी भूत्वा तव प्रवेशे कारणं भवामि]।

दारिद्र्यम् —प्रिये, त्वया सहधर्मचारिण्या गुणमयत्रिमूर्तिष्वपि सुलभमात्मनः प्रवेशं मन्ये। (गाढं परिष्वज्य)

इन्द्रधनाधिपकमलाः किमलाघवमाश्रयन्ति नो तावत्।
यावन्न देवि भवती भवतीव्रां केलिमावहति ॥ १५ ॥

तथापि प्रियाप्रेमानुबद्धमनसा हरिणा मामपनीय क्वचित् स्वानुगृह्येष्वपि दिश्यते कमला। तत् कतिपयदिनं यावदधुनैव गुरोरनुज्ञया कृतोपयमनस्य कण्ठावलम्बित-सरस्वतीदाम्नः श्रीदाम्नः आश्रयेणायुर्गमये।

दुर्मतिः —तारिसस्स महाभाअस्स तवस्सिणो समदमवेरग्गप्पहुदीहिं अहिट्ठिदस्स पुरदो अहं कहं चिट्ठिस्सं। [तादृशस्य महाभागस्य तपस्विनश्शमदमवैराग्यप्रभृतिभिरधिष्ठितस्य पुरतोऽहं कथं स्थास्यामि।]

दारिद्र्यम् —प्रिये, नूनं प्रागेव दत्तोत्तरमेतत्। (स्वगतम्) भगवदनुज्ञया प्रवृत्तस्यापीदृशे कर्मणि न मे मानसमासादयति प्रसादम्। यतो हि महान्तः —

अभिनवकृतपरिणयनं विद्वांसं धर्मकर्मरतम्।
नाभिभवन्ति स्थविरं राजानमनागसं बालम् ॥ १६ ॥

तत्तस्य कृतविद्यस्य हरिर्भगवान् अनागसो नूत्नपरिणीतगृहिणीमुख-लोलचक्षुषो यजिदानातिथिपूजारज्यदन्तःकरणस्य प्रत्यूहव्यूहरूपिणा मया कथं भवितव्यम्। (क्षणं विभाव्य) अहह कष्टा परप्रयोज्यता। अत एव—

नियमितबाह्येन्द्रियतया मानसक्लृप्तैकभावबन्धुरया।
स्वप्नदशयैव नूनं रज्यति को वा परप्रयोज्यतया ॥ १७॥

अथवा कृतमनेन चिन्तनेन। यतः स्वादृष्टकृतमेव नरो भोगमर्हति। (प्रकाशम्) प्रिये, श्रीदामानं यास्यद्भिरस्माभिः सरस्वती पक्षपातितया साधु श्रिया वैर निर्वर्तयिष्यते।

दुर्मतिः ––**अज्जउत्त, कहं उण सिरीसरस्सईणं वैरं ?** [आर्यपुत्र, कथं श्रीसरस्वत्योर्वैरम् ?]

दारिद्र्यम्––प्रिये, कलहो नाम स्त्रीणां कुलधनम् । तत्रापि नीचमूर्खजनरक्ता श्रीरन्तर्वाणि-कुलान्यनुगृह्णन्ती वाणी चेत्यसमानशीलव्यसनितया न तयोरधिरोहति प्रेम-भूमानम् । भवतु यथा तथा वा । विप्रेषु तु श्रियो नाञ्चति कुञ्चितोऽप्यपाङ्गभङ्गः । यतो दृश्यत एव––

गृहीतो हृदये धर्मः कण्ठे बद्धा सरस्वती ।
एतैरितीव विप्रेभ्यः स्वैरं श्रीरपसर्पति ॥ १८ ॥

(नेपथ्ये)

प्रबुद्धोऽस्मि । अयमहं रात्र्यवशेषं विज्ञायागत एव श्रीमच्चरणाभ्यर्णम् ।

दारिद्र्यम्––प्रिये, एष श्रीदामा सहान्तेवासिना रात्रिशेषं विज्ञातुमित एवाभिवर्तते । तदेनं तावत् प्रतिपालयावः । (इति परिक्रम्य स्थितौ) (ततः प्रविशति श्रीदामा शिष्यश्च)

श्रीदामा––वत्स गालव, कियदवशेषा यामवती ?

गालवः ––(दिशोऽवलोक्य) कल्यकल्पैव । यतः

गृहीतताराकुसुमस्य दूरमावृष्टचन्द्रस्तबकं प्रतीच्या ।
अयत्यनूरुद्युतिपाटला दिङ् नभस्तरोः पल्लवभावमैन्द्री ॥ १९ ॥

अपि च ––

अनूरुकरसङ्करारुणितमन्यतोऽप्येकतः,
सितांशुकिरणावलीवलनयावलक्षीकृतम् ।
क्वचिन्निबिडवारिदव्यतिकरेण नीलान्तरं,
निजत्रिगुणरूपतां स्फुटयतीव विष्वङ्नभः ॥ २० ॥

अपि च ––

आत्तरणैरलमेभिः स्वाभाविकभूषणवतीनाम् ।
इति रात्रिसख्युपहृतं प्राची नक्षत्रभूषणं त्यजति ॥ २१ ॥

श्रीदामा––(विलोक्य) वत्स, कल्यकल्पैवेति किमाह । नन्वेष भगवांश्चक्रचक्रचङ्क्रममाण-विरहकारी–

अग्रे काश्यपिना निवारिततमस्तोमेन भृङ्गावली–
दण्डं ताण्डवयद्भिरम्बुजकुलैरारब्धपत्तिक्रमः ।

सन्ध्याशोणवितानभाजि गगनप्रान्ताजिरे संस्थितो,
मन्दं मन्दमुदेति भूपतिलकस्पर्द्धाकरोऽहस्करः ॥ २२ ॥

गालवः -- (विलोक्य)

पूर्वमहीधरशिखरे निद्राणो घर्मकरमाली ।
पक्षिकलकलविबुद्धः पश्यति रोषादिवोद्ग्रीवम् ॥ २३ ॥

अपि च –

शोणीकृतं स्वकिरणै रसेन पूर्वाचलं पतगः ।
श्रुत्वेन्दुनावलक्षितमुद्गतरोषारुणोऽम्बरे पततिं ॥ २४ ॥

श्रीदामा -- वत्स, तद्यावदुपहृतसमित्कुशकुसुममुपहितविविधविधिसमुपकरणमेतिह्यवानुपचरितकतिपयधनिकमहमतिथिसमयमनतिक्रममाण आगत एव ।

गालवः—(सस्मितम्)--इतरानभिधानपूर्वकमतिथिग्रहणमेवाचार्यैः कृतम् ।

श्रीदामा--वत्स, आश्रमेषु सारं गार्हस्थं तत्राप्यतिथिसपर्येति आमनन्ति आगमविदः ।

दारिद्र्यम्:--(सहसोपसृत्य) भगवन् अयमहं भवदातिथेयीमर्थयमानः प्राप्तोऽस्मि । तन्न साम्प्रतं साम्प्रतमतिथिसमयं समुल्लङ्घ्य गन्तुम् ।

गालवः--(विलोक्य सभयम् । किञ्चिदपसृत्य सभयम्)

अहो क एषः --

त्वक्श्लिष्टकीकसमिलद्धमनीनिकायः,
कायस्फुटन्मलसमुत्थितपूतिगन्धः ।
विष्व ? व्यधत्तरपटच्चरगुप्तगुह्यो,
रूक्ष्वोर्ध्वकेशनिवहः प्रविकीर्णदन्तः ॥ २५ ॥

अपि च --

जघनतटघटत्पयोधरायास्तिमिरसमानरुचेर्दधन् प्रियायाः ।
करमहह निमग्नलोचनायाः प्रकटितदन्तमुदीर्णवर्णभाजः ॥ २६ ॥

(विभाव्य) अनुपदमेव पैशाचीं प्रवृत्तिमापन्नः कश्चित् पापयोनिर्भविष्यति ।
(सत्रासम्) (अक्षिणी निमील्य) आचार्य, त्राहि त्राहि ।

श्रीदामा--वत्स, मा भैषीः । गच्छ स्वयोगमनुतिष्ठ । अहमपि मदनुष्ठित-चिरसुकृतफलीभूतमिममतिथिविशेषं नमस्ययोपस्थाय यथावस्थानकावस्थितोयावद् भवामि ।
(इति दारिद्र्यदुर्मतिभ्यां सह निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये)

अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम् ।

गालव--(कर्णं दत्वा) कथमाचार्याणामिवार्तस्वरः ।

(पुनर्नेपथ्ये)

अहह ! कष्टं कष्टम् । अतिथिरूपधारिणा दारिद्र्येण बलादविभाव्य वञ्चितस्तपस्वी श्रीदामा ।

गालव--(सोद्वेगरोषम्) कथं दारिद्र्यहतकेनास्मदाचार्योऽभिभूतः । तद्यावदेनमर्थं माथार्थ्येनोपलप्स्ये । (इति परिक्रामति)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति प्रथमोऽङ्कः

अथ द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशतः प्रवेशिन्यौ सख्यौ)

एका--हला कुमुदिणी, चिरेण उण दिट्ठासि। तेण अण्णं व्व तुह रूवं पेख्खामि। [सखि कुमुदिनि, चिरेण पुनर्दृष्टासि। तेन अन्यदिव तव रूपं प्रेक्षे।]

अपरा--हला णलिणी, घरकम्मवावडाए, मह अवसरो च्चिअ ण होइ । अज्ज अज्जाए गोरीवंदणं कुणंतीए सुमणाइं उच्चेउं पेसिदम्मि । दिट्ठिआ तुमं दिठ्ठासि । [सखि नलिनी, गृहकर्मव्यापृताया ममावसरोऽपि न भवति। अद्यार्यया गौरीवन्दनं कुर्वन्त्या सुमनांस्युच्चेतुं प्रेषितास्मि । दिष्ट्या त्वं दृष्टासि ।]

नलिनी--हला, कित्ति तुह अज्जा तत्तहोदीए णमस्सं कुणइ ।
[सखि, किमिति तवार्या तत्रभवत्याः नमस्यं करोति।]

कुमुदिनी--दोगच्चपच्चादेसत्थं । [दौर्गत्यप्रत्यादेशार्थम्]

नलिनी--तेण तं हीअदि । [तेन तद्धीयते]

कुमुदिनी--अह इम् । [अथ किम्]

नलिनी--ता अम्हसहीए सिरिदामघरिणीए कहिस्सं । [तदस्मत्सख्यै श्रीदामगृहिण्यै कथयिष्ये।]

कुमुदिनी––किं ताए ? (किं तया ?)

नलिनी––सहि, उज्जमणप्पहुदि तिस्सा पइस्स दालिद्दं उवट्ठिदं । संपदं सो वुड्ढो ण सक्केइ चलिदुं वि । सा उण पाएहिं पीडिज्जंती मुणालिअव्व किलामंती कहं वि घरव्वावारं उव्वरुहइ । तं दट्ठूण मह मणं उव्वावरीअदि । [सखि, उद्यमनप्रभृति तृष्णां प्राप्य दारिद्र्यमुपस्थितम् । सम्प्रति स वृद्धो न शक्यते चलितुमपि । सा पुनः पादयोः पीडयन्ती मृणालिकेव क्लाम्यन्ती कथमपि गृहव्यापारमुपरोहति । तां दृष्ट्वा मम मनः उच्चावचीयति ।]

कुमुदिनी––ता मम वि एअं आवस्सअं । जाव अज्जाए जहट्ठिदं वड्डाप्पउत्तिं उवलहिअ तुह णिवेदइस्सं । [तन्ममाप्येत्तदावश्यकम् । यावदार्याया यथादिष्टं वृद्ध-प्रवृत्तिं तव निवेदयिष्यामि ।]

नलिनी––सहि, एव्वं करीअदु । अहं वि सरंगदं तं चेअ अण्णेसामि [सखि, एवं क्रियताम् । अहमपि सारगतं तमेवान्वेषयामि ।] (इति निष्क्रान्ते)

प्रवेशकः

(ततः प्रविशति श्रीदामा गालवश्च)

श्रीदामा––(सनिर्वेदम् । स्वगतम्) हन्त । दौर्गत्यं नाम नरस्य आधिव्याधिमयः कश्चिदान्तरालिकः षष्ठः कोशः, अशर्मानुभावकं पञ्चममन्तःकरणम्, दुःखमात्रारम्भ-कश्चतुर्थो गुणः, सन्ततसन्तापदं तृतीयमदृष्टम, सकलापदधिकरणं द्वितीय आत्मा । अहह, अमुना दारिद्र्यहतकेन वयं दूरमाकुलीकृताः । यदनुजातगदोऽपि विषादी । जानेऽविभाविताराम चकितभावा दक्षिणाशाधरकदर्थनाकृष्ट-जीवना तत्क्षणचिन्त्यमानोत्तरक्रियापि दक्षिणमार्गप्रेरिणी निधनता निर्धनता समे चेति । यस्याश्च–कर्णलोचनरसनरहितभावेति वाचा प्रभावनिरोधो ऽनुभूयते । (निःश्वस्य) अहो नु खलु भोः न केवलममुनेह लोकादपि तु स्वर्गादपि निःश्रेयसादपि प्रच्यावितोऽस्मि । (सावष्टम्भम्) अथवा––

अयोध्यावृत्तिश्चेत् षडरिनिवहैर्बोधमधुरा,
समायासौ काशी हरिकलनया नाथवचनात् ।
स काञ्ची संसारान् प्रतिपदमवन्ती परपदे,
कृतद्वारास्माकं कथमिव न मोक्षोऽस्ति सुलभः ॥ १ ॥

(आकाशे) साधु रे दारिद्र्यहतकः साधु यत् सांख्यानेव दर्शितभूतविकार-प्रकृतिना कृतकणादपक्षपातेनापि लुप्तचतुरभावेन वैद्यकेनेव प्रकटितसन्नि-पातेन धातुनेव नानोपसर्गाकृष्टतत्तदर्थेन त्वयेदृशीं दशां प्रापितोऽस्मि । यत्र

स्वप्नेऽपि शर्म नानुभवपथमवतरति । अथवा कृतममुना पराधीनप्रवृत्तिना तमेवैतदनुकूलादृष्टप्रवृत्तिनिमित्तमखिलजगतीलताजननजरठकन्दं प्रार्थनाभङ्गीभिर्याचदङ्गीकृत्येदं जनं करोमि । (क्षणं प्रणिधाय)

जयाकृष्टकण्ठीरवाकुण्ठवैकुण्ठलुण्ठाकदैतेयकण्ठाटवीलोठनोत्कण्ठपाठीनवेषस्फुरत्कामठीं वृत्तिमाश्रित्य बिभ्रन्महीं त्वम् ।

तथा पोत्रिपोत्रं पवित्रं वितन्वन् सगोत्रश्च गोत्रां । बिभर्षि प्रकर्षेण देवर्षिहर्षाय कर्षन्नमर्षेण दैतेयपर्षत्पतिप्राणजातम् बलिं हेलया व्यालमालाविलासालयस्थं वितन्वन् ।

अलं कार्तवीर्यं स्ववीर्येण गर्वेण निर्वीर्यमुत्सार्य भूमिं समर्यादमार्येषु कुर्वन्, अखर्वोर्वसर्वस्वगर्वौघसर्वङ्कषक्रोधविक्रोशसङ्क्रान्तिसङ्क्रन्दसङ्न्दनक्रामविक्रान्तलङ्केशपङ्केशया - गालिभास्वत्प्रताप !

देवदामोदरोदारदारारिरंसादरं सादरं साधयन् साधु कंसादिसंसारसंसारमासादयन् । बुद्धबुद्धोद्धतानेकबुद्धिप्रबोधस्फुटत्स्फारवेदापहार प्रलुप्तक्रियाजातसञ्जातकारुण्य हे ।

यवनार्णव कुम्भसमुद्भव मां परिपाहि दशाकृतिकीर्त्यतनो ?
कलयाशु निजाशुगसङ्करसंहृतदैत्यजनाशुग देव हरे ॥

जृम्भन्नवाम्भोजशोभातिदम्भापहारस्फुरत्पादपाथोजरज्यन्नखद्योतखद्योतितानेक निस्तन्द्रचन्द्रस्फुरन्मेदुरोदारपाथोजसार्थप्रभाव्यर्थकश्रीलसत्वाङ्ग,

नवाम्बुजमण्डलगर्वविमोचनलोचनशोचनजातविमोकदिवौकपलोककिरीटविटङ्कुटङ्कक - कोटिमहाश्मजरश्मिविराजितपाद ?

अल्पितभूधरतल्पितपन्नगनायक जल्पितकोटि विधायक कल्पितसंसृतिहायक दायक मोक्षफलस्य मलस्य विधर्षक ?

जय जय शर शरदुदितशिशिरकरनिकररुचिर रुचिरसुचिरचितमलं मलमलयनिलयमुपनय मम सुररिपुसमररसपर ।

चिन्त्यः सर्वैर्देवैर्वेदैर्गम्यः सम्यङ् नम्यो यम्यः ।
स्वान्तैरन्तःकान्तैः ज्योतिःप्रान्तैः दीप्ताशस्त्वम् ।

विष्णो पायाः पायाः सदा सामराजस्य भक्तिं प्रयच्छेति याञ्ञा
मृषा मास्तु लक्ष्मीपते हे नमस्तुभ्यमस्तु ॥ २ ॥
अनुबन्धवशेन जन्मिनां भवताधारि दशावतारिता ।
मधुसूदन मत्कृते कथं हृदयं ते न भवत्युरुव्यथम् ॥ ३ ॥

अपि च--

विश्वेश वीक्ष्यसे यद्गुणहीनस्त्वं न मां गुणिनम् ।
तस्मादेव जनेऽस्मिन् नेक्षन्ते निर्गुणाः प्रभवः ॥ ४ ॥

(सविलक्षस्मितम्)

तथ्यमकरोः प्रवादं त्वमहं चैको न मे स्पृश ग्रन्थिम् ।
वदतीति ममैवांशः सुखी भवान् दुःखिनं तु मां त्यजेति ॥ ५ ॥

अपि च--

अज्ञातजन्ममृत्युव्यसनस्यानन्दविग्रहस्य तव ।
नृहरे कथं भविष्यति परदुःखध्वंसनेच्छाऽपि ॥ ६ ॥

भवतु । किमनेन परिदेवनेन । स्वतः पिप्पलास्वादतरलानां नान्तरीयकं प्रियाकरोति दुःखाकरोति च । तद्यावद् ब्राह्मण्या वसुमत्या गृहोपकरणोदन्तमुपलप्स्ये । (इति परिक्रामति) (प्रकाशम्) वत्स गालव, क्व तावद् ब्राह्मणीमन्वेषयामि ?

गालव--भगवन्, एषोटजाजिरे नलिन्या किमपि मन्त्रयन्ती तत्रभवती तिष्ठति ।

श्रीदामा--(विलोक्य) कथं प्रफुल्लमुखकमलेवाद्य ब्राह्मणी ।

गालव--भगवन् नित्यं प्रसन्नेव तत्रभवती । यतः--

तिमिरागमशून्यानां दिशन्तीनां रजःक्षयम् ।
वापीनाञ्च कुलस्त्रीणां सत्त्ववत्त्वात् प्रसन्नता ॥ ७ ॥

श्रीदामा--तदनयोर्वृत्त्यन्तरितावेव शृणुवो विस्रम्भालापम् । (इति तथा कुरुतः)

(ततः प्रविशति वसुमती नलिनी च)

नलिनी--तदो तदो ? [ततस्ततः]

वसुमती--सहि, विह्मरिदह्मि । ता जाव सुमरामि । [सखि, विस्मृतास्मि । तद्यावत् स्मरामि ।] (क्षणं स्मृत्वा) सहि, तेण पुरुसेण मंदरक्खुहिदछीरोअलच्छीसरिच्छं अंसुअ-जुअ-पिणद्धेण करं गहिअ णिजुत्तरीएण अहं पच्छादिदा। [सखि, तेन पुरुषेण मन्दरक्षुभितक्षीरोदलक्ष्मीसदृशमंशुकयुगपिनद्धेन करं गृहीत्त्वा निजोत्तरीयेणाहं प्रच्छादिता ।]

श्रीदामा--कस्तावत् स भवेत् ।

गालव––स्वयमेव प्रकाशमेष्यति ।

नलिनी––तदो तदो । [ततस्ततः]

वसुमती––तदो तेण चुवुअम्मि अहं धारिदा। [ततस्तेन चिबुकेऽहं धृता।]

श्रीदामा––(सासूयम्) कथं चिबुकग्रहोऽपि ।

नलिनी––तदो तदो । [ततस्ततः]

वसुमती––आणंदुव्वेगेण विसुमरिदह्मि। (स्मृत्वा) तदो तेण दिव्वरूविणा गगणंगण-कसकुंभस्स कुंभिणो पुट्ठ-वलहीए आरोहिअ अहं फुल्लकुसुमसणाहं विविह-रुक्खभरिज्जंतं उज्जाणं णीदा । [आनन्दोद्वेगेन विस्मृतास्मि । (स्मृत्वा) तदा तेन दिव्यरूपिणा गगनाङ्गणकषकुम्भस्य कुम्भिनः पृष्ठवलभ्यामारोह्या ऽहं फुल्लकुसुमसनाथं विविधवृक्षभरितमुद्यानं नीता ।]

श्रीदामा––कथमुद्यानं नीता । अलमतः परं श्रुतेन ।

गालव––भगवन् कथावशेषं तावत् पालय ।

श्रीदामा––(अश्रुतमिव सरोषम्) अपि बन्धकीस्थाने यदस्य पुरुषापसदस्यानुरागवशया-ऽनार्यकार्यपरया दौर्गत्यव्यत्यस्तं श्रीदामहतकं विप्रलभ्य सप्त पितृकुलानि निरयपथमवतारितानि । अथवा मूर्खापसद श्रीदामहतक, अनुभव साधु-तपश्चरणाग्निहोत्रादिफलम् । (आकाशे) साधु रे परयोषारसिक, दुर्गतं वृद्धं कुरूपञ्च मामवेत्य हर्तुमिच्छसि मत्सहचारिणीम् । एष त्वां स्मर्तव्य-पदं प्रापयामि । (इति द्वित्रिपदानि गत्वा) अथवा एनामेव पापका-(चा)रिणीं विनीतां करोमि । (इति गन्तुमिच्छति)

गालव––भगवन्, कथावशेषं पालय । (इति अवष्टम्भयति)

नलिनी––तदो तदो । [ततस्ततः]

वसुमती––तदो तह च्चिअ करिकंधट्ठिदेण तेण पफुल्लपम्मपुंडरीअ-कुवलअ-कंदोह-परिमलुग्गारो बहूदमहुअरमहुरझंकारभरिदं चक्कचक्कंगचओरचाउरी-चरिदं सरिदं ओअरिअ दुव्वणभाअणम्मि सिसिरं सरिदंसणं दुद्धं पाइदा। [तदा तथैव करिकन्धस्थितेन तेन प्रफुल्लपद्मपुण्डरीककुवलयकन्दलपरिमलो-द्गरप्रभूतमधुकरमधुझङ्कारभरितं चक्रचक्राङ्गचकोरचातुरीचरितं सरित-मुत्तीर्य च दुर्वर्णाभाजने शिशिरं शशिदर्शनं दुग्धं पायिता।]

श्रीदामा––(दन्तान्निष्पीड्य) हन्त दुरितचरितभरिते ईदृशानि सखीषु शंसन्त्यास्त्रपापि न रुणद्धि गिरम् ?

नलिनी--तदो तदो । [ततस्ततः]

वसुमती--तदो सग्रं कंठादो दुद्धमुद्धमोत्ताहलिक्केकावलीं कड्ढिअ मह कंठम्मि तेण ठाविदा । भणिदा ग्र—ग्रइ सुसीले, खणं खणं तुमं मे मणं रज्जेसि । तेण णेहगंठिसंठिदं तं चलिदुं वि ण पारेदि । [ततः स्वयं कण्ठाद्दुग्धमुक्तमौक्तामेकावलीमुत्तार्य मम कण्ठे तेन स्थापिता । भणिता च—ग्रयि सुशीले, क्षणं क्षणं त्वं मे मनः रञ्जयसि । तेन स्नेहग्रन्थिसन्धितं तत् चालितुमपि न पार्यते ।)

गालव--(स्वगतम्) पावनप्रकृतिरार्या । किन्नु खलु भवेदेतत् ?

श्रीदामा--श्रुतं श्रोतव्यम् । (इत्युद्धतं परिक्रामति)

गालव--भगवन्, क्षणं स्थीयताम् (इति बलात् स्थापयति)

श्रीदामा--(सरोषम्) धिङ मूर्ख, ईदृशीनां मुखजघनचपलानामघनररीणां चरिते विश्वस्तोऽसि ।

नलिनी--तदो तदो । (ततस्ततः ?)

वसुमती--तदो महंते पच्चूसे ग्रज्जउत्तसुमिरज्जंत-णराग्रणणामरिंछोलीसद्दं सुणिग्र पवुद्धम्मि । [ततो महति प्रत्यूषे ग्रार्यपुत्रस्मर्यमाणनारायणनामाक्षरालिशब्दं श्रुत्वा प्रबुद्धास्मि ।]

श्रीदामा--(सस्मितम्) कथं स्वप्नदर्शनमेतत् । बलवान् खलु नश्चित्तव्यामोहः संवृत्तः ।

गालव--भगवन्नविभाविता क्रियाऽनर्थकारिणी भवतीति वेदविदो वदन्ति ।

नलिनी--सहि रमणिज्जो एसो सिविणग्रो । जाणे इमिणा तुरिदं ज्जेव्व ग्रतुलिदं सिरिग्रं सिरिवदूव्व उव्वहिस्सदि तुह वल्लहो । [सखि, रमणीय एष स्वप्नः । जानेऽनेन त्वरितमेवातुलितां श्रियं श्रपितिरिवोद्वहिष्यति तव वल्लभः ।]

वसुमती--सहि, एव्वं होदु तुह वग्रणेण । परं मह मंदभाइणीए ग्रच्छीणं सोहग्गं पेक्खिदुं कहिंतो एत्तिग्रो ग्रासंधो । [सखि, एवं भवतु तव वचनेन । परं मम मन्दभागिन्या ग्रक्षीणं सौभाग्यं प्रेक्षितुं कुतः एतावदासन्धः ?]

नलिनी--सहि, कुमुदिणीए अत्ताए अणुठ्ठिदं गोरीए व्वदं करेसु । जेण एदस्स सिविणअस्स सच्चत्तणं पेक्खिस्ससि । [सखि, कुमुदिन्या आर्यया अनुष्ठितं गौर्याः व्रतं कुरु । येनैतस्य स्वप्नस्य सत्यत्वं प्रेक्षिष्यस्ते ।]

वसुमती--सहि अस्सवम्मि । जाणम्मि णिओओ जुज्जइ जेव्व । ता अज्जउत्तस्स सवणातिहिं एदं व्वदं कदुअ अणुचिठ्ठिस्सं । [सखि, आश्रवास्मि । जानामि नियोगो युज्यत एव । तदार्यपुत्रस्य श्रवणातिथिमेतं व्रतं कृत्वाऽनुष्ठास्यामि।]

श्रीदामा--शोभनः स्वप्नः । तदनुरूपैवेयं गौरीव्रतादेशिनी नलिन्याः वाणी । तत्सर्वथा शुभोदर्कैवायतिः प्रतिभाति ।

गालव--भगवन्, द्वाराणि खलु शुभाशुभज्ञानस्य शकुनस्वप्नादीनि । तदसंशयं शंसित एव कतिपयैरहोभिरमुनातिशयः फलस्य ।

श्रीदामा--(सावधानम्) सर्वथा नमोऽस्त्वघटितघटनापटीयसे वेधसे । तद्भवत्वदसीय-मुखादवगतस्वप्नवृत्तो यथोचितं करिष्ये । (इत्युपसर्पति)

नलिनी--(दृष्ट्वा । जनान्तिकम्) सहि, एसो तुह वल्लहो उवगदो। [सखि, एष तव वल्लभ उपगतः ।]

वसुमती--(भुग्नग्रीवम्) कहं अज्जउत्तो । (कथमार्यपुत्रः ।) (सहसोत्तिष्ठति)

श्रीदामा--आर्य सुव्रते, अलमलम् ।

> **तपोदौर्गत्ययोगाभ्यां खिन्नमेवाङ्गकं तव ।**
> **प्रत्युत्थानादिना भूयः क्लेशितुं तन्न साम्प्रतम् ॥ ८ ॥**

(इति नाट्येन यथोचितमुपविशन्ति) युवयो रहस्यवार्तान्तःपातिभिरस्माभिः स्वमौग्ध्यमावेदितम् ।

नलिनी--णहि णहि तारिसो को वि रहस्सो जो तुम्ह पुरदो वि ढक्कीअदि । सि-विणअं दाव पिअसहीए मह अग्गदो कहिदं । ता कहंतसुणंताणं अम्हाणं तुम्हे आअदा । [नहि नहि तादृशं कोकिम रहस्यं यद् भवतः पुरतो आच्छाद्यते स्वप्नं तावत् प्रियसख्या ममाग्रतः कथितम् । तत् कथितश्रृण्वतोरावयोर्यू-यमागताः ।]

श्रीदामा--(सादरं श्रुत्वा) रमणीयः स्वप्नः । (सोपहासम्) विविधवसनाभरण-सुखमनुभवतु ब्राह्मणी ।

वसुमती--तुम्ह प्पसाएण । (युष्मत्प्रसादेन)

नलिनी--इमीए गोरीव्वदं दाव कादव्वेति मे पच्चासा। (अनया गौरीव्रतं कारयितव्यमिति मे प्रत्याशा)

श्रीदामा--युज्यते।

वसुमती--किं सिविणेहिं व्वदेहिं अ जाव तदणुरूओ जणो ण किज्जइ। देव्वं उण पुरुसकारं अणुचिट्ठइ। [किं स्वप्नैः व्रतैश्च यावत् तदनुरूपो जनो न क्रियते। दैवं पुनः पुरुषकारमनुतिष्ठति।)

श्रीदामा--कः प्रयत्नः।]

वसुमती--महेसराणां अणुसरणं जेव्व। (महेश्वराणामनुसरणमेव)

श्रीदामा--अयि मूढे,, सकलदौर्गत्यगदागदङ्कारः कोऽसौ महेश्वरादतिरिच्यते। महेश्वरः योऽस्माभिरर्च्येत।

वसुमती--णं भणामि हारिदमग्गणं जण तिण्हो वअस्सकुललण्हो कण्हो तुम्ह कोम्मारमारहिअ एक्कोवज्झाअग्गहिदवेदसण्णो दारआए रज्जसुहं अणुभोदि। सो तुम्ह दंसणमेत्तेण सुमरिदपुव्वचरिदो अवणेसदि एदं दलिद्ददुःखं। [ननु भणामि हारितमार्गणजनतृष्णः वयस्यकुलश्लक्षणः कृष्णः युष्माकं कौमारमारभ्य एकोपाध्यायगृहीतवेदसंज्ञो द्वारिकायां राज्यसुखमनुभवति। सः युष्माकं दर्शनमात्रेण स्मृतपूर्वचरितोऽपनेष्यति इदं दारिद्र्यदुःखम्।]

श्रीदामा--अयि मुग्धशीले, श्रीर्नाम जनस्य मौग्ध्यमिन्द्रियाणां, जाड्यमङ्गकानाम्, अमादिरमुन्मादनम् अगरलमाघूर्णनम्। अथवा गरलमेवैषा यदेतत्सङ्गमात् जातदवथुर्भगवान्, नारायणोऽपि पद्मनाभः पद्मपाणिः जलराशौ शिशिरं शेषशयनं श्रयति अलकापतिश्च हिमानीगिरिम्। किं बहुना—यन्नित्यवसतिभूतं स्वज्वलनशङ्काकवलितं कलयति कमलं कमलम्। तदनयाऽलिङ्गितमूर्तेः समस्तसामन्तचक्रचक्रवर्तिचञ्चरीकचुम्बितचरणनलिनयुगलस्य भवति न त्रप्तवतः क्वक मादृशो दृशोर्विषयः। किञ्च याञ्चापि मानभृतो मानवस्य कुरुते छन्दोरीतिरिव जिह्वालाघवेन गुरोरपि लघुताम्। अयि भद्रे शृणु--

कण्ठभूमौ मानजुषां याच्ञाप्रेरितचेतसा।
पुरो निस्सरणे प्राणवचसोर्जायते रणः॥ ६॥

तत् क्व मम गमनं, क्व दर्शनं, क्व परिचयः, क्वालापः, क्व पूर्ववृत्तस्मरणं, क्व ममावस्थाज्ञानं, क्व तस्य करुणा, क्व मम याच्ञा, क्व वस्तूपलब्धिः, क्व दारिद्र्यनाशः, क्व ते वसनाभरणतृष्णानिवृत्तिरिति सर्वमसमञ्जसम्। तत् कृतमनेन यत्नेन।

वसुमती--अज्जउत्त , सच्चं एदं सव्वं । तहवि तुम्ह (इत्यर्धोक्ते) [आर्यपुत्र, सत्यमिदं सर्वम् । तथापि तव...(इत्यर्धोक्ते)]

श्रीदामा--कथमर्धोक्त्या खण्डितो वचनक्रमः । किमस्माकम् ?

वसुमती--(अपवार्य) सहि, कहं पूजारहाणं एव्वं कहिस्सं। [सखि, कथं पूजार्हाणामेवं कथयिष्ये ?]

नलिनी--जहट्ठिदकहणे ण दे आदीणओ । (यथास्थितकथने न ते आदीनवः)

श्रीदामा--कथं मुद्रितैव वाचि ?

वसुमती--(सस्मितम्) तुम्हकुलक्कमागदो एसो जेव्व आजीवो। ता जुज्जइ गमणं ति पडिभादि । [युष्मत्कुलक्रमागत एष एवाजीवः । तद् युज्यते गमनमिति प्रतिभाति ।]

श्रीदामा--(स्वगतम्) इयमेवं ब्रवीति । ममापि तावत्--

यस्त्राता जगतां यमाह निगमस्तत्त्वञ्च येनाप्यते,
यस्मै योगिजनो नमः प्रकुरुते यस्मात् परो नापरः।
यस्यैतत्सकलस्त्रजीवभुजगो यस्मिन् जगद् दृश्यते,
सान्द्रानन्दमयः पुराणपुरुषः स्याच्चक्षुषोर्गोचरः ॥ १० ॥

(इति सपुलकं क्षणं स्थित्वा) (प्रकाशम्) तद्भवतु यथाभिरोचते भवत्यै। अस्ति किमपि तन्नयनविषयीकर्तुमुपायनम् ।

वसुमती--(स्मृत्वेव) अण्णं किं वि णत्थि । परं रुअंताणं पिहुआणं अत्थे पिहुआ णु मुट्ठिमिदा ठाविदा चिट्ठंति । ताणं गंठिअं बंधिअ कज्जे सज्जो होदु अज्जउत्तो । [अन्नं किमपि नास्ति । परं रुदतां पृथुकानामर्थे पृथका ननु मुष्टिमिताः स्थापिता तिष्ठन्ति । तेषां ग्रन्थिं बद्ध्वा कार्ये सज्जो भवत्वार्य-पुत्रः ।]

श्रीदामा--(सविमर्श स्वगतम्) किं पृथुकैः ? अथवा भक्तवत्सलः स देवः। (प्रकाशम्) तद् देहि। (इति गृहीत्वा ग्रन्थिं वध्नाति)

वसुमती--(सस्मितम्) देहीति इहज्जेव भिख्खाए पणवो भणिदो अज्जउत्तेन। (विलोक्य) गंठि वि सोह ज्जेव्व । जाणे ता अच्छदा सइला हुविस्संदित्ति संसेदि । [देहीति इहैव भिक्षायाः प्रणवो भणित आर्यपुत्रेण। (विलोक्य) ग्रन्थिरपि शोभनैव । जाने ते अक्षताः सफलाः भविष्यन्तीति शंस्यते।]

श्रीदामा--अस्तु यथा तथा।(पार्श्वे विलोक्य) गालव, साधयावस्तावत् ।

गालव--भगवन्, अभिजिन्नामायं मुहूर्त्तः । तत् त्वरितमेव प्रास्थानिकसूक्तपठन-पुरस्सरं स्थाने प्रस्थातुम् ।

श्रीदामा--किमयमभिजित् । (ऊर्ध्वमवलोक्य) स एष दिनस्य मध्यमो मुहूर्त्तः । अहो माध्याह्निकी वेला । इह हि--

क्षणं मध्ये स्थित्वा गगनपरिमाणं तुलयति,
त्रयीभूते तेजस्यभिहितनिजक्रीडनरसाः ।
दलत्पद्माटव्यामभिसृमरमाद्यन्मधुकरी,
मरन्दव्यात्यूक्षीमहह दधतेऽमी मधुलिहः ॥ ११ ॥

गालव--इह हि--

सवितरि ललाटतापिनि घर्मक्लमतश्चिरं विवृतम् ।
पञ्चाननास्यकुहरमुच्छालुर्विशति पक्षिणां पङ्क्तिः ॥ १२ ॥

(विमृश्य । सस्मितम्)

नक्षत्रैः शशिना कृपीटजनुषा युक्तं समासादितं,
यत्तद्धर्ममयूखमालिनिरुचामाचार्यकं कुर्वति ।
पातङ्गैर्मणिभिः स्फुटद्भिरमलज्वालाकुलैर्जज्वले
न ध्वान्तापगमाय नाम्बुजवनीहासाय तत्साहसम् ॥ १३ ॥

श्रीदामा--ब्राह्मणि, साधयावस्तावत् ।

वसुमती--(सास्रम्) सुअंधगंधवहंदोलिदचंदणसंदाणिदा सुहअरा होंदु तुह मग्गा । अहं वि णलिणीसंदिट्ठं गोरीवदं जाव करेमि । [सुगन्धगन्धवहान्दोलित-चन्दनसन्तानिता सुखकरा भवन्तु युष्माकं मार्गाः । अहमपि नलिनीसन्दृष्टं गौरीव्रतं तावत् करिष्यामि ।]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इतिद्वितीयोऽङ्कः

अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति गगनयानेन गन्धर्वः)

गन्धर्व--(पुरोऽवलोक्य) कथं प्रियरूप इव दृश्यते । (निपुणं विलोक्य) सखे प्रियरूप!

प्रियरूप—अहह, रूपप्रियः ।

रूपप्रियः —सखे, चिरेण दृष्टोऽसि । कतरस्तावदियदनेहसमलङ्कृतो विषयः ।

प्रियरूपः —वयस्य, तत्रभवता दनुजाचार्येण महेन्द्रवैरस्याय पारिजातहरणं नाम रूपकं नाटितम्। तद्दिदृक्षादरेण तावद्दूरमुपढौकितोऽस्मि ।

रूपप्रियः —कथं तत् प्रयोजितम् ?

प्रियरूपः —तत्रादौ तावत् सूत्रधारेण प्रस्तावनानुपदं भामा प्रवेशिता ।

(ततः प्रविशति भामा)

भामा —णहु णहु जीविस्सं जाव महंगणे पारिजादो ण ठ्ठिदो ।

[न खलु न खलु जीविष्ये यावन्ममाङ्गणे पारिजातो न स्थितः ।]

इत्यादि सख्या सहालपन्त्यां तस्यां कृष्णः प्रवेशितः ।

(ततः प्रविशति कृष्णः)

कृष्णः—**अलमलमलसाक्षि ते विषादैः**
ननु नयनाञ्चलनोदनाविधेये ।
प्रणयिनि पदपद्मयोर्जनेऽस्मिन्
करगत एव तवास्ति पारिजातः ॥१॥

इत्यभिधाय तेन तत्कालमितामर्षेण महेन्द्रस्य श्लोक इव, पुण्यप्ररोह इव, मान इव, बाहुरिव, वंश इव, स्वर्गलक्ष्म्याः सौभाग्यमिव, ... वसतिरिव समुन्मूलितः स तरुरिति परिशेषिते रूपके चिरं वल्लभावदनवीक्षणविधुरः स्वभवनाय मनो गन्तुमकरवम् । दिष्ट्याऽपश्यं वयस्यम् । त्वं तावत् क्व गन्तुं निहितमनाः प्रियावियोगमनुभवसि ?

रूपप्रियः —सखे, अहमपि तेन तरुणा मण्डितं मदनोद्यानं वीक्ष्य तत्रभवता यदुकुलललामभूतेन रासलीलायामप्रेरि मनः । सा परश्वोभूते दिने भविष्यतीति तद् दिदृक्षायां मनो प्राहिणवम् । तावद्वयस्यमिलनानन्ददवथुना मध्येमार्गं महितोऽस्मि । किञ्च श्रीदामाऽपि प्रायः पारिजातोदन्ताकलनायैवार्थी भवितुमद्य प्रस्थितोऽस्ति । तदपि कुतुकतरमेव लोचनविषयीभविष्यति ।

प्रियरूपः —सखे, श्रीदाम्नो न कौतुकम् । स हि प्रथमे वयसि भगवतः सहाधीती तद्दर्शनमात्रेणैव स्मृतपूर्ववृत्तो वासुदेवो दुर्गतेर्वियोज्य तमात्मसाम्यं नेष्यति । परन्तु रासलीलायां ममाप्यस्ति कुतूहलम् ।

रूपप्रियः —कथमात्मसाम्यं श्रीदामानं नेष्यति ?

प्रियरूपः ––आत्मसाम्यमिति किमाश्चर्यं वयस्यस्यासीत् ।
पश्य––

विगलितकल्मषनिवहैश्चेतोभिर्भावितोऽनुलवम् ।
वितरति निरञ्जनोऽयं स्वाभेदं जन्मिनां तरसा ॥२॥

रूपप्रियः ––तद्वयस्य, त्वया सह गच्छतो मम रासरसे भगवानपि लोचनगोचरो भविष्यति ।

प्रियरूपः —सखे, तत् त्वरितं गत्वा श्रीदाम्नोऽपि प्रवृत्तिमुपालभामहे । (इति निष्क्रान्तौ)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशति श्रीदामा गालवश्च)

श्रीदामा ––वत्स, अद्य स्वभवनात् प्रस्थितानामस्माकं जातानि कानिचिच्छुभसूचकानि शकुनानि ।

गालवः —का खलु तत्र वार्ता । शृणोतु भवान्––वामे वातायवो, दक्षिणे दात्यूहव्यूहाः, पुरः पारावताः, कुञ्जे केकी, दिवि मिथुनानि, कूलेषु कुम्भाः जलसम्भृताः अनुकूला नद्यो वायवश्च ।

श्रीदामा ––(पवनस्पर्शमभिनीय । सानन्दम्)

परागस्थगनाल्लुलब्धवर्णा आमोदशालिनः ।
हरन्ति हन्त सन्तापं सज्जना इव वायवः ॥३॥

गालवः––(स्वगतम् । प्रायो वयोऽवस्थाभेदेन विषया अपि भिद्यन्ते ।
यतस्त एव मम––

गृहीता मन्दपानीया धूतमध्यसरोरुहाः ।
दारयन्ति मनः कामनाराचा इव वायवः ॥४॥

(स्तोकमन्तरं गत्वा) पुरोऽवलोक्य । (प्रकाशम्) भगवन्, किमिदं महीमिलनायातविततव्योमेव निखिलनिशावसानापगततिमिरविश्रामधामेव उच्छलल्लीयमानतारानिकरमिव दृश्यते ।

श्रीदामा —वत्स, उच्छलद्बहलवीचिनिचयचुम्बितचपलवेलादलदेलादलदलननागरः सागरः ।
य एषः ––

उच्छलद्बहलोल्लोलचलत्कम्बुकुलच्छलात् ।
नयत्यखण्डमिहिकाखण्डान् शीतांशुमण्डलम् ॥५॥

यश्च—दिवस इव चलदहिमकरः, श्रोतुरिव धृतगिरिकाननः, माङ्गलिकलय इव शोभिततरङ्गमालः, विन्ध्य इव पालितदण्डायामवेलः, नानागमहितोऽपि बुद्धख्याततत्त्वः, दुग्धपरिणाम इव लब्धोचितदधिभावः, । य एषः —

क्रामत्पाठीनपुच्छक्षुभिततिमिकुलाकाण्डसङ्घट्टलोलत्–
पानीयात्कवेल्लन्मणिगणकिरणाकीर्णकिर्मीरिताम्भः ।
एनामन्वर्थसंज्ञां जलनिधिवसनां चित्रशालीयधाटी–
मालम्बन् बालवीचीनिचयकुहकतो बद्धनीविः करोति ॥६॥

गालवः —(विलोक्य । सभयम्) भगवन् पश्य । अयमपांनिधेर्मध्यादाकाशचुम्बिशिखनिवहः शिखावान् वाडवः समुल्लसति ।

श्रीदामाः —(सस्मितम्) वत्स, नासौ वाडवः । विद्रुतजात्यभास्वरकार्तस्वरमयी द्वारिका ।

गालवः —कथं द्वारकां प्राप्तौ स्वः ?

श्रीदामा —अथ किम् ।

गालवः —(सहर्षम्) तर्हि त्वरयतु भगवान् । येनातिथिसमय एव श्रीकृष्णदेवस्य मन्दिरं प्राप्य षड्रसोपेतचतुर्विधाभ्यवहार्येणौदर्यवीतिहोत्रं निर्वृत्तचापलं कुर्वः ।

श्रीदामा —(सरोषस्मितं तिर्यगक्षणा पश्यन्) धिङ मूर्ख, नित्यमौदर्यकार्यमन्तरा न ते विचार्यमस्ति । (पुरोऽवलोक्य) (सहर्षम्) कथमियं पूरपूर्वदर्शनापि नयनयोरमृतबिन्दुसन्दोहान् निस्यन्दयति । यैषा गोमती प्रत्यासन्नगोकुला मधुरा केवलं नात्र शमनस्वसा । यत्र च पीताम्बरा अनन्तभोगिभाजः प्रत्यासन्नपद्मालयाः गोविन्दविग्रहा इव ग्रहाः । येषु च न गदाचिता, न वैकुण्ठाश्रयाः, न विपक्षोद्धृताः, नानङ्गजनकाः , नाक्षिगतजैवातृकाः, अपि समाहितधनञ्जया युधिष्ठिरप्रियाः कलितसुदर्शनाः, रचितरमणीरागाः अच्युताः विहितकला-कलापसज्जनाः सज्जनाः । या च पातालपुरी-कञ्चुकिभिः कुण्डलिभिः सकम्बलैर्नागैरावृता एकककर्कोटकः सञ्चरदनेककर्कोटकाऽपहसति । कुबेरकपालिगोत्रभृत्तपनप्रेतपतिरक्षःपाशिप्रभञ्जनचन्द्रादिसमधिमधिष्ठितां नैतद्विधजनाश्रया स्वर्गभूमिमपि ।

गालवः —(पुरो विलोक्य) पुरत इदं दृश्यते महदन्तरालं तत् पूरयितुं सुवर्णसमृद्धिर्नासीत् कृष्णदेवस्य ।

श्रीदामा —(सस्मितम्) वत्स, गोपुरमेतत् (विलोक्य) दक्षिणेन गोमतीं दरीदृश्यते कस्यचित् सुपर्वण आलयः तदुपस्पृश्य तस्याः पुण्यं पयः तच्च प्रदक्षिणीकृत्य यावत् पुरं प्रविशावः।

(इति परिक्रम्य तथा कृत्वा देवालयाभिमुखं दृष्ट्वा) अये अयं भक्ति- रहित विमुखः सिंहमुखः। (सप्रणिधानम्)

पाहि दनुजसङ्घातघातकारण रणचटुर्लसिंह तुलितमुखपद्म !

वज्रसखनख विपुलबल वेदसार कृतविभव चक्रखण्डित-
सकलखल-देवमुनिमनुजवन्द्यपादपङ्कज शशिविमल
संसारबन्धविघटनकुशल विषयवासनाछेदकर
धर्मार्थकाममोक्षद रसिकचक्रपिनाकाभयदकर ॥७॥

अपि च--

चिन्तयन्निव भक्तानां मोक्षमार्गमनुक्षणम् ।
व्यादाय मुखमास्ते यः स देवः पातु नः सदा ॥८॥

(इति स्तुत्वा नत्वा परिक्रामति) वत्स, क्वचिद्धाराभृतो श्वानसीश्च वल्गयन्ति सादिनः क्वचित्पुष्करिणः कुण्डलीकृतकरान्नागानभिनन्दन्ति नरेन्द्राः, क्वचिदरि-पृष्ठपातिनो रथानमानिनश्च वृथा एव कर्षन्ति, क्वचिद् गुप्तमन्त्रा अक्षपरि-वृत्तिज्ञातसंख्या मन्त्रिणो दृश्यन्ते, क्वचित् कषायितनेत्रा दण्डधरा धार्ष्टिका यतयश्च विलोक्यन्ते, क्वचित् कृतसुवर्णालङ्कारजातिवृत्तयो नाडिन्धमाः कवयश्च वीक्ष्यन्ते, क्वचिद् बिन्दुमती जातिः सभा च भासते, क्वचित् काव्यैरिव सप्रासैः सयमकैश्चारैरुपचरिता प्रतोलीयम् । तद् विविक्तपथा श्रीकृष्णप्रासादद्वार-मासादयावः। (इति परिक्रामतः)

(ततः प्रविशति रुक्मिणीसत्यभामाभ्यां सह पर्यङ्कस्थः श्रीकृष्णः मञ्चपादावलम्बी भूमिस्थो विदूषकः परितश्च स्त्रीकदम्बः।)

कृष्णः —वयस्य, मानो नामाबलानां कामुकचित्तवशीकरणाय कार्मणम्, येन पारिजातोद्देशेन धृतमानयाऽनया दूरमाकुलीभूतं नश्चित्तम् ।

विदूषकः --मज्झण्णे खुधाए बह्मणस्स मणं व । [मध्याह्ने क्षुधया ब्राह्मणस्य मन इव ।]

कृष्णः —(सस्मितम्) तदागते पारिजाते क्षणमपगतमानाभ्यामाभ्यां जह्नु कलिन्दतन-याभ्यामिवोदन्वान् निर्वृत्तोऽस्मि ।

विदूषकः --(भामां विलोक्य) वअस्स, दाणिं भामाए माणो पाहुणिओ त्ति तक्केमि । [वयस्य, इदानीं भामाया मानो प्राघुणिक इति तर्कयामि ।]

कृष्णः --तया मानवत्या तव का क्षतिः ?

विदूषकः —मह बह्मणी वि एव्वं चिअं भामादेइए चरिदं सुणिअ सअं करिस्सदि त्ति चिंतं उव्वहेमि । [मम ब्राह्मण्यपि एवंविधं भामादेव्याश्चरितं श्रुत्वा स्वयं करिष्यतीति चिन्तामुद्वहामि ।]

कृष्णः —किं तेन ?

विदूषकः —तुए उण घुणक्खरं विअ उवणीदो देवरुक्खो मारिसस्स सक्को सिंहं ज्जेब उप्पाड-इस्सदि । [त्वया पुनर्घुणाक्षरमिवोपनीतो देववृक्षो मादृशस्य शक्तः सिंह इव उत्पादयिष्यति ।]

(ततः प्रविशति प्रतिहारी)

प्रतिहारी —(सप्रणामम्) देअ, सिरिदामत्तिणामहेओ को वि बह्मणो सहंतेवासिणा पडिहार-भूमिं अलंकरेदि । [देव, श्रीदामेतिनामधेयः कोऽपि ब्राह्मणो सहान्तेवासिना प्रतिहारभूमिमलङ्करोति ।]

कृष्णः —(सस्मरणं सोत्कण्ठम्) कथं श्रीदामा । तत् त्वरितं प्रवेश्यताम् ।

विदूषकः —को सो सिरिदामा ? [कोऽसौ श्रीदामा?]

कृष्णः —अस्मत्सहाध्यायी प्रियवयस्यः ।

विदूषकः —अह्मतो वि वअस्सो ? [अस्मत्तोऽपि वयस्यः]

कृष्णः —एकतीर्थाश्रयत्वे किमु वक्तव्यम् ।

विदूषकः —ता सोच्चेअ प्पिअवअस्सो होदु । अणुजाणीहि मं णिअबह्मणीए चरणा सुस्सूसिदुं । [तत् स एव प्रियवयस्यो भवतु । अनुजानीहि मां निजब्राह्मण्याश्चरणौ शुश्रूषितुम् ।]

(प्रविश्यापटीक्षेपेण पुरुषः)

(ससम्भ्रमम्) देअ, आअदे आअदे । [देव, आगतः आगतः ।]

कृष्णः —क आगतः ?

पुरुषः —देअ, आअदे दलिद्दे । [देव, आगतः दरिद्रः]

विदूषकः —तुमं दलिद्दभाअणं त्ति मुहं ज्जेव्व कहेदि । [त्वं दरिद्रभाजनमिति मुखमेव कथयति ।]

प्रतिहारी —भट्टप्पसाएण तस्स कि त्ति दरिद्दं हुविस्सदि । [भर्तृप्रसादेन तस्य किमिति दारिद्र्यं भविष्यति ।]

कृष्णः —किं प्रलपसि । सावधानं कथय ।

एसो अग्गे कहेम्मि । संभमेण विशुमलिदे कहणिज्जे । (क्षणं स्मृत्वा) भट्टके, आअदे दलिद्देण आलिंगिदेव्व किशे शिलाजालमेत्तदंशणिज्जे शतखंडसूज्जंतवसणपेलंतगंठिदगंठिसंठवणवावडकले कण्णाशवेद लंबिज्जंतकुच्चकुच्चरंछादिअंदेवासिएण दंदाइंपशालिअ हग्गेअबम्हण त्ति भणंते दुवाले ठ्ठिदे हग्गेतं पेक्खिखअ ख्खदवरात्थले पेटपुट्टिभेअशण्णा शुण्णिअजणगहिलधवलिज्जो वंदलोअणंताफए अंदेवासिए दंदाइं पसालिअ हग्गेअ बम्हएां त्ति भएांते दुवाले ट्ठिदे हग्गे तं पेख्खिअ एशे किमक्कले किंभूदे किं पालइ एत्ति शंकिए. · · शंभमभमिज्जंते देअसआशं आगदे । [एषोऽग्रे कथयामि । सम्भ्रमेण विस्मृतं कथनीयम् । (क्षणं स्मृत्वा) भर्तः आगतो दारिद्र्येणालिङ्गित इव कृशशिराजालमात्रदर्शनीये शतखण्डसूच्यमानवसनपरिधितग्रन्थितग्रन्थिसंस्थापनव्यापृतकरे कृष्ण ·· लम्बितकूर्चसञ्छादितवक्षःस्थले उदरपृष्ठभेदसंज्ञाशून्यितजनर्गातिलधवलित · ·पश्यल्लोचनतारकैः यदेवाशिषेण दन्तान् प्रसार्य अहं ब्राह्मण इति भणन् द्वारे स्थिते सति तं प्रेक्ष्य एष किं कृते, किंभूते, किं न · ·इति शङ्कया सम्भ्रमभ्रममाणः देवसकाशमागतः ।)

बिदूषकः —(सहासम्) रमणीओ वअस्सो प्पिअवअस्सस्स । [रमणीयो वयस्यः प्रियवयस्यस्य ।]

(सक्रोधम्) धिङ् मूर्ख, स्वानियोगेऽपि च क्रमसे ।

(पुरुषः साशङ्कमोष्ठान्तर एव किञ्चिद्वदन् मनागपसरन् निष्क्रान्तः ।)

कृष्णः —(प्रतिहारिणं प्रति) सुभूते, शीघ्रं प्रवेशय ।

प्रतीहारी-जद्देवो आणवेदित्ति । [यद्देव आज्ञापयति] (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति गालवेन सह श्रीदामा)

श्रीदामाः —(पुरोऽवलोक्य । सहर्षम्) वत्स, पश्यसि विविधनूत्नं रत्नस्तम्भसङ्क्रमदनेकप्रतिविम्बजनिजनताभ्रमे क्वचित् स्फुरदनेकपद्मरागभित्तिविसृमरमयूखविसरकृतबालातपशङ्काविजृम्भदम्भोजाहितदिवसनिश्चयापगतरथाङ्गनामपतत्रिविरहभ्रमे, क्वचित् स्फटिकस्थलीप्रतिफलितमयूरग्रहणायासितलीलाकपिनि, क्वचिन्मणिमयमहीरुहशिखरस्थितरत्नपतगदर्शनपतदनेकशकुन्तारब्धग्राम्यधर्मभासिनि, क्वचिन्निमुक्तजलयन्त्रनिस्सरज्जलधाराशिखागत· · ·रिगादिफलवृत्तकुतूहले क्वचिन्मन्दपवनधूतखादिरानलदत्तागरुशकलप्रसृतपरिमलवहले सञ्चरदबलामुखकमलामोदतरलेन्दिन्दिरमन्दिरे मुक्तामलमुक्ताफलजवनिकाजालायां सम्मुखीनशालायां मणिमयमञ्चाधिष्ठितपक्षिविशेषसूक्ष्मगरुत्पूरिततूलिकायां तदुपधानाहितचीनराशिस्थ ···चीवरप्रान्तबन्धकचामीकरतन्तुचूलिकायामासीनं भैमीभामाभावित-

चलच्चामरचरन्मरुदुपवीजित, तरुणेन्द्रनीलशकलमरीचिपटलालेपपाटनपटु-दीधितिं, चामीकरचारुवसनवञ्चिताचिररोचिरुचं, कर्कन्धूफलबन्धूकृतमौक्तिक-दामतारकितवक्षःस्थलं, कण्ठावलम्बितवैजयन्तीचुम्बितप्रपदपातुक—त्रिभुवन-जनमुकुटकोटिकोटिविटङ्कर्कचिरत्नरत्नरश्मिरञ्जितनखं, मकरकुण्डलशिखा-निखातमहामणिकिरणकिर्मीरितकपोलपालिमलिकतललम्बिमुक्ताप्रतिसरघट्टितकि-रीटप्रभाजालापहसितदिनकरं, निजाननचन्द्रचन्द्रिकाचमनचञ्चुचञ्चुभक्तचित्त-चकोरं, मत्तवारणावलम्बितपञ्जरान्तरचारिसारिकाशुकादिगीतपुण्यश्लोकम्, आकर्षणमणिमिव कामिनीमनसाम्, हंसमिव मुनिमानसानाम्, पुण्यपरिणाममिव यदूनाम्, प्रेमेव गोपीनाम्, कन्दमिव सुखानाम्, मायातिमिरापनोदनं, भक्तनयनानामञ्जनम्, गञ्जनं संसृतिविपदाम्, जगञ्जनरञ्जनं निरञ्जनं वयस्यम् । **(स्वगतं सानन्दपुलकोद्गमम्)**

उपनिषद्गहने हरिरूपि यत्,
प्रणव-नाक-तले हरिरूपि यत् ।
दहरविष्णुपदे हरिरूपि यत्,
किमपि धाम पुरो हरिरूपि यत् ॥९॥

(प्रकाशम्)

आमोदभागुदित्वरमकरन्दं रश्मिकेसरप्रचितम् ।
नयनमधुव्रतयुगलं यदुपतिनीलोत्पलं हरति ॥१०॥

कथमुन्निद्रनयनपुण्डरीकमित एव पश्यति वयस्यः । तदुपसर्पावः ।
(इति पुरः सर्पति)।

(कृष्णः ससम्भ्रमं पर्यङ्कादवतीर्य श्रीदाम्नश्चरणयोर्निपत्य तं गाढं परिष्वजति ।)

श्रीदामा —परिष्वङ्गस्तवानेकजनतातापहारिणः ।
निमज्जयति मामङ्ग सुधानीरनिधौ सखे ॥११॥

कृष्णः—(सस्मितम्) प्रेम्णामेष महिमा । (इति बलादेनं पर्यङ्कमुपवेश्य स्वयं सविनय-मुपविशति । गालवः यथोचितमुपविशति ।)

कृष्णः—(रुक्मिणीसत्यभामे प्रति) युवाभ्यां नाभिवन्दितावस्मद्वयस्यातिथिचरणौ तदभिवन्दयतम् ।

उभे—अज्ज, प्पणमामि त्ति । [आर्य, प्रणमामि इति]

(इति तथा कुरुतः । श्रीदामा आशिषमाशास्ते ।)

विदूषकः —श्रीदामानं प्रति) कण्हसंबंधेणं ग्रहं वि तुह वग्रस्स्से तेण प्पणमामि। [कृष्णसम्बन्धे-नाहमपि तव वयस्यः। तेन प्रणमामि]

(श्रीदामा प्रणमति)

विदूषकः —वग्रस्स, पज्जंकोवरि उग्रवेसिदुं जइ लंबकुच्चोच्चग्रो कालणं भोदि ता ग्रहं वि कुच्चं वढ्ढावइस्सं। [वयस्य, पर्यङ्कोपरि उपवेशितुं यदि लम्बकूर्चोच्चयः कारणं भवति तदहमपि कूर्चं वर्द्धापयिष्ये।]

कृष्णः —मैवं मैवम्।

विदूषकः —(सहर्षम्) सुणिदं मए णं एदस्स पत्तीए मम वि खंडखज्जग्राभरिखादव्वा हुविस्संदित्ति। [श्रुतं मया नन्वेतस्य पत्या ममापि खण्डखाद्यकाभरिखादव्या भविष्यतीति।]

कृष्णः —कः कोऽत्र भोः।

प्रतीहारी —(प्रविश्य) ग्राणवेदु देग्रो। [ग्राज्ञापयतु देवः।]

कृष्णः —ग्राहूयतामतिथिसपर्योपकरणसहितः पुरोहितः।

प्रतिहारी —जं देग्रो ग्राणवेदि त्ति। [यद्देव ग्राज्ञापयतीति] (इति निष्क्रम्य पुरोहितेन सह प्रविशति) देव, एसो ग्गहीदोवग्ररणो पुरो पुरोहिदो चिट्ठदि। [देव, एष गृहीतो-पकरणः पुरः पुरोहितस्तिष्ठति।]

कृष्णः —ग्राचार्य, श्रौतेन विधिना पूजयातिथिम्। ग्रथवाऽहमेव चरणनिर्णेजनविधिं चरिष्ये। देवी तावदावर्जयतु जलधाराम्।

पुरोहितः —यथाभिरोचते भवते।

(कृष्णस्तथा करोति। रुक्मिणी जलधारां विसृजति सत्यभामा चेलाञ्चलेन पादौ प्रोञ्छति। कृष्णः पदनिर्णेजनाम्भसा देव्योः स्वस्य च मूर्धानमभ्युक्ष्यति पुरोहितः यथावदर्चयति।)

विदूषकः —बाहिरतो ग्राग्रदस्स णमस्सा किज्जदि। ता ग्रहं वि संझाए दिग्रसोढ्ढो ग्रहही हुविस्सं ग्रग्रं णुवरभोग्रणस्स। ग्रहं उण सव्वस्स वि। ता णिब्बूढं एदाहिंतोवि मह वग्रस्सत्तणं हुविस्सदि। [बाह्यत ग्रागतस्य नमस्या क्रियते। तदहमपि सन्ध्यायां दिवसोढोऽतिथिर्भविष्ये (ग्रयं नु वरभोजनस्य। ग्रहं पुनः सर्वस्यापि। तन्नि-र्व्यूढमितः प्रदेशात् ग्रपि मम वयस्यत्वं भविष्यति।]

कृष्णः —(सस्मितम्) त्वादृशस्य विशेषात् सूर्योढस्यातिथेरातिथियी ज्ञायत एव।

विदूषकः —किं सिंहं गहिअ। [किं सिंहं गृहीत्वा।]

(सर्वे हसन्ति)

कृष्णः —आचार्य, त्वरय तावत् सूदान् विविधोपस्करवतीं रसवतीं विधातुम्।

पुरोहितः —यदायुष्मान्नाज्ञापयति। (इति प्रतीहारिणा सह निष्क्रान्तः)

कृष्णः —वयस्य, किमप्यानीतमस्ति मदर्थे प्रसादीभूतं चित्तसंविधानकम्। (श्रीदामा सलज्जं ग्रन्थिं परामृशति। कृष्णः बलाद् ग्रन्थिं (सं) मोच्य पृथुकान् गृह्णाति।)

कृष्णः —(विलोक्य सस्मितम्) वयस्य, बहूपनीतम्। यतः

प्रायः स्नेहभृता क्लृप्तमानन्त्याय प्रकल्प्यते।
प्रसरत्यतिमात्रेण बिन्दुः पयसि सर्पिषः ॥१२॥

(सस्नेहं श्रीदाम्नोऽङ्गान्यभिमृश्य) वयस्य, शैशवमारभ्य भवानुपरतवृत्तिरेव विषयेषु प्रायोऽनाचरच्छरीररक्षणेऽपि सदयं हृदयम्। कुतस्तमामर्जने श्रममधिष्ठानभूतायाः श्रियः। अथ कच्चिदुपयेमे सुसूत्रान् वृत्तशलिनो हृदयाभिनन्दिनो दारान्?

श्रीदामा —वयस्य, किं किं न सम्भाव्यते त्वादृशि वयस्ये।

कृष्णः —**यथा यथा जनो भूयाद् विषयेषु गतस्पृहः।**
तथा तथा जगत्-साक्षी दिशत्यभ्यर्णमेव तान् ॥१३॥

श्रीदामा —(स्वगतम्)

चराचरान्तरानन्दमयः साक्षी भवान् हरे।
मानुषीं तनुमास्थाय क्रीडतीतरलोकवत् ॥१४॥

(कृष्णः सविमर्शस्मितं परिष्वजति)

विदूषकः —दुवे वि संपदं रसिल्ला जादा। ता जाव पज्जंकोणुल्लोओ होइ ताव कुंडिअं आणेमि। [द्वावपि सम्प्रति रसिकौ जातौ। तद् यावत् पर्यङ्कोऽनुल्लोचो भवति तावत् कुण्डिकामानयामि।]

भामा —मुहं ज्जेव्व प्पसारेदु अज्जो। [मुखमेव प्रसारय त्वार्यः।]

विदूषकः —जह रुप्पिणीदेइए पिअवअस्सस्स पेम्मं दठ्ठूण इअरो प्पसाएइ। [यथा रुक्मिणीदेव्याः प्रियवयस्यस्य प्रेम दृष्ट्वा इतरः प्रसारयति।]

(भामा अक्षणा तर्जयति)

कृष्ण —वयस्य, कच्चित् स्मरस्यावयोस्तत् ।

अम्भोवाहविमुक्तवारिनिवहे आप्लावितायां भुवि,
न्यञ्चद्वैद्युतवह्निविभ्रमविधिन्यस्ते समस्ते जने ।
आदेशादथ देशिकस्य दवतो दर्वीकरेणावृता——
न्येधांस्यानयतोः कुतोऽपि समभूद्यत् कोऽपि कम्पक्रमः ।।१५।।

श्रीदामा —सखे, तस्मिन्नहनि प्राणत्राणमेव नः कृतं कृपावता भवता । किमु वक्तव्यं स्मर्यते इति ।

(नेपथ्ये शंखस्वनानन्तरम्)

भो भोः क्रियन्तां प्रत्यग्रचन्दनद्रवादिग्धस्निग्धा सत्वरचत्वराः, तंभ्यन्तां देशिकानि ...रवकाशकसूक्ष्मांशुकगृहाणि, प्रसार्यतां परिताप्यगरवीर्धूपधोरणी, समाहूयन्तां भोजकाः, प्रक्षाल्यन्तां काञ्चनमणिमयानि पात्राणि, स्थाप्यन्तां त्रिपादिकाः, उपनीयन्तां शशिशिशिरसुरभिसलिलभरिता रत्नभृङ्गाराः, सञ्चार्यन्तां परिवेषकाः, परिवेष्यन्तां व्यञ्जनानि, अपसार्यन्तां नयनदूषकाः, तर्प्यन्तां नाकिनः, हूयन्तामनलाः, पूज्यन्तां महीसुराः, दीयन्तां बलयः, निरुध्यन्तामन्यजनसञ्चाराः । यत आगत एव भगवानशेषजनताकृतसेवो देवो वासुदेव इति ।

कृष्णः —(आकर्ण्य) वयस्य, त्वरयति परिजनोऽभ्यवहारेतिकर्तव्यतोपकरणेषु । तन्निर्वर्त्य मध्याह्निकमिमां वेलां प्रमदोद्यान एव वाहयामः ।

श्रीदामा —यथाभिरोचते वयस्याय ।

विदूषकः —(अपवार्य) दिट्ठिआ परिजणसद्देहिं जुण्णमक्कडमुहादो व्व मोइदो प्पिअवअस्सो । वअस्स, अदिहिप्पसादेण मह वि रसणा मिठ्ठाइं रसदु । णव्वरबह्मणी गलंमि अलंस्खलइ । [दिष्ट्या परिजनशब्दैः जीर्णवानरमुखादिव मोचितः प्रियवयस्यः । वयस्य, अतिथिप्रसादेन ममापि रसना मिष्टानि रसतु । नवलब्राह्मणीगलेऽलं स्खलति ।]

कृष्णः —त्वरितं गच्छामः । (इति सर्वे परिक्रामन्ति)

(ततः प्रविशति प्रमदोद्यानाधिकृतः पुरुषः)

पुरुषः —कृताभ्यवहारो देव इत एवाभिवर्तते । तद्यावदुपसर्पामि । (इत्युपसर्पति)

(ततः प्रविशति श्रीदामगालवाभ्यां विदूषकेण च सह कृष्णः)

कृष्णः —(पुरोऽवलोक्य) सुमित्र, आदेशय प्रमदोद्यानमार्गम् ।

सुमित्रः—(सप्रणामम्) इत इतो देवः । (सर्वे परिक्रामन्ति) इदं तत् प्रमदोद्यानद्वारम् । तत् प्रविशतु देवः । (सर्वे प्रवेशं नाटयन्ति)

कृष्णः—(पवनस्पर्शमभिनीय)

वने लतानां कुसुमाभिमर्शं कृत्वाम्बुकेलिं सह पद्मिनीभिः ।
भृङ्गीभिरङ्गीकृतगीतिरेति कामीव कामं शनकैः समीरः ॥१६॥

श्रीदामा—न खलु न खलु ।

कृताभिषेकाः सरसीषु पुष्पमधूलिकाभूतिर्भरं दधानाः ।
भृङ्गाक्षमालाः पवनाः प्रयान्ति द्विजा इव स्पर्शभियातिमन्दम् ॥१७॥

कृष्णः—(सस्मितम्)

स्पृशति लताः पुष्पवतीः कीलालं सर्वतो वहति ।
पिबति समं मधु मधुपैः कथमयमास्तां सखे पवनः ॥१८॥

सुमित्रः— विश्रामस्थानमिव मिहिकायाः, कुलगृहमिव वर्षायाः, उत्पत्तिस्थानमिव चन्द्रलोकस्य, निर्वृतिपदमिव शीतजातस्य, आगारमिव शृङ्गारस्य, परिपन्थीव धर्मस्य, निवारकमिव रविकिरणानां, त्यक्तमिवालोकैः, निशामयमिव, तिमिरमयमिव, छायामयमिव, सुखमयमिव, जनकं विकाराणाम्, निर्वापकमिन्द्रियाणाम्, अनुभावकं भावानाम्, उन्मादनं मदानाम्, उद्दीपकमप्यालम्बनं रसानां प्रमदोद्यानं पुरः पश्यतु देवः ।

यत्र च घनसार-पीतसार-त्वक्सार-सिन्दुवार-कोविदारमन्दार-सहकार-कर्णिकारशितिसार-जम्बीर-वानीर-करवीर-पाटीर-वीरपुर-खपुर-मालूर-खदिर-कदर-बदर-ताल-तमाल--हिन्ताल-कृतमाल-नक्तमाल-क्रन्दरालचलदल-दधिफल--जन्तुफल-निचुल- पिचुल- चतुरङ्गुल-मञ्जुल-वञ्जुल-मधुष्ठील-मधुल-गुडफल-विडुल-फेनिलोद्दालकदलीलाङ्गलीलवलीशालमली--धात्री-चित्री-शोभाञ्जनाञ्जन-जम्बू-सर्ज-खर्जूर-पर्जन्यार्जुन-जपा-न्यग्रोध-शिग्रु-मुनिद्रु-पारिभद्र- सर्वतोभद्र-भद्रपर्ण-सप्तपर्ण - पर्णस्वर्णवर्ण - प्लक्षाक्षादिवृक्षलक्षलक्षितक्षणे, काश्चनोत्का इव कलितोद्वेगाः, काश्चन कलहान्तरिता इव प्रथमं कलिकोपक्रमभाजः, पुनर्मदनबाणासनातिमुक्तशिलीमुखभिन्नाः, काश्चन स्वाधीनपतिका इव प्रियालापनसङ्गताः, स्वच्छन्दकृतवृक्षारोहाः, काश्चन रूपगर्विता इव त्यक्तकाञ्चनाः, काश्चन गणिका इव स्पृष्टपृथुलकुचाः, काश्चन कुलटा इव नर्तिताक्षाः, काश्चन निशाचर्य इव पीतर-

क्तपलाशाश्रिताः, काश्चन गोप्य इव रक्तकृष्णाः, काश्चन पाण्डवपक्षपातिन्य इव पीतार्जुनाः, काश्चन नद्य इव घटिततालाः कृतशैलूषाश्रया विधृतप्रवालाश्च, काश्चन गर्भिण्य इव धृतदोहदाः, काश्चन प्रजाता इव सुप्रसवाः, काश्चन वैद्यक्रिया इव सफलाः, काश्चन मुग्धा इव सलज्जाः, काश्चन चन्द्रकला इव सलक्ष्मणाः, काश्चन विप्रलब्धा इव रुचिरसङ्केतकमधिष्ठिताः, काश्चन द्रुपदजा अपि कृतशकुनिपक्षपाताः, काश्चन सुभद्रा अपि कृतभीमाश्रयाः, काश्चन इङ्गितज्ञा इव सूचितवर्णधराः, काश्चन भोगिभोगभाजोऽपि वियोगिन्यः परितो वीरुधो दृश्यन्ते ।

यत्र च भासुरे अपर्णात्वं गिरिजायां, अनकेशित्वं यतिविधवादिषु, भिन्नपत्रत्वमाजिपराजितरवादिषु, गतपुष्पत्वं जरठयोषित्सु, उच्छिन्नमूलत्वं भवद्रिपुषु, स्थाणुत्वं शङ्करे, विशाखत्वं कुमारे दृश्यते न लताद्रुमेषु । यत्र च निरुद्धप्रभञ्जना धृतदमना योगिन इव केदाराः । यत्र च सुरभीततिर्दृष्टमात्रैव तनोति वृषोल्लासाम् । यत्र च राशय इवोपान्तस्थितकुम्भाः, दृष्टमीनकर्कमकरमिथुनोल्लासाः कासाराः, यत्र च कोकिल-कोक-चकोर-कलहंस कलरवकङ्क-किकीदिवि-कलिङ्ग-कलविङ्क-करेटु-कृकण-कृकवाकु-करट-कालकण्टक ढक-केकिलव-तित्तिर-कीर-कारण्डव-कुक्कुभ-कोयष्टिक-वर्तक-चातक-पुष्कराह्लादिविविधविष्किर - जातिजनितकूजित-भिन्नालिपुञ्ज-मञ्जुगुञ्जितरञ्जितजलजजातजातरणरणकाविष्करणे क्वचित् सरसि सञ्चरत्करेणुभिन्नशतपत्रे पुण्डरीककोकनदे, क्वचिद्देशे ललिततृणराजौ सरस्तटे, क्वचिद्देशे जलभरभृते नवोलपालोलहारिणे पवनाय स्पृहयन्ति जनाः । किं बहुना सर्वरामणीयकानामारामभूतमिदं कं कं नरं न रञ्जयति ?

कृष्णः —साधु सुमित्र, साधूपलक्षितं रक्षितञ्च । यतः-इतो बकुलानामितोऽशोकानामितो दाडिमानामितो बीजपूराणामितो हाटहूराणामितश्चम्पकानामितः पुन्नागानामितः कादम्बानामितो नारङ्गाणां प्रतोलीषु तत्तदालवालवलनास्त्विमितेन सतीकटाक्षेणेव तावन्मात्रसञ्चारमांसलेन पुनः सारणीषु पांसुलानयनभङ्गभङ्गुरेणाञ्चितं वञ्चयति चेतोजन्मानम् ।

श्रीदामा —सखे, इतः पश्य कुतुकम् । विकचविचकिल-मतल्लिका-मल्लिकापरिमल-पतदलिकुलझङ्कारमुखरितशिखरास्तरवो गृहीतरुद्राक्षमाला जपन्त इव लक्ष्यन्ते ।

गालवः —इतोऽपि कपिझम्पितकम्पितपतत्रित्रपाकरकर्मकुण्ठनोच्चरितोच्चतरविरुतवाचालितनभस्तलया निवेदयन्तीवोदन्तं शाखिनो भवते ।

विदूषकः —चउक्के ठ्ठिदं वणवण्णणं । ता अहं पि पंचमो हुविअ वण्णेमि । [चतुष्के स्थितं वनवर्णनम् । तदहमपि पञ्चमो भूत्वा वर्णयामि]

कृष्णः — किं पञ्चत्वं प्राप्य ?

विदूषकः — तं पावेदु मह ससुरस्स पुत्तओ । वअस्स, पेक्ख पेक्ख । इदो कुंदकलिआओ कूरं विअइल्लपसवाइं दहीइं मालइपुप्फाइं कढ्ढिअदुद्धाइं कुरंटआआइं ढइसुअं पुण्णाग-मजरीओ असोअवत्तिआओ णारिंगफलाइं मोदअं मरुवअकदंबमणआ-पत्त-साकाइं किंसुआसोआइं आमिसाइं कदुआ परिवेसअंतीव्व वणदेवदाहिं भुंजंतीए व सिरीए । [तत् प्राप्नोतु मम श्वसुरस्य पुत्रकः । वयस्य, पश्य पश्य । इतः कुन्दलतिकाः भक्तं विचकिलप्रसवानि दधीनि मालतीपुष्पाणि क्वथितदुग्धानि कुरण्टकान्याढकीसूदं पुन्नागमञ्जर्यः अशोकवर्तिकाः नारङ्गफलानि मोदकं मरुवककदम्बमनकापत्रशाकानि किंशुकाशोकानि आमिषाणि कुतुकात् परिवेशयन्तीव वनदेवताभिः भुञ्जन्तीं वनश्रियम् ।] (सर्वे हसन्ति)

कृष्णः —(सस्मितम्) धिङ् मूर्ख, भोज्यातिरिक्तो न ते कस्यापि कारणस्य विषयः ।

विदूषकः — मह बह्मणीए पसाएण सव्वकरणाणं वि विसआ भोअणिज्जा ज्जेव्व । [मम ब्राह्मण्याः प्रसादेन सर्वकरणानां विषयाः भोजनीया एव ।] (सर्वे पुनर्हसन्ति)

कृष्णः — (परितो विलोक्य) सखे, पश्य पश्य ।

छायापतौ समन्तात् ? करसञ्चारं कुर्वति दिशासु ।
उत्सङ्गयन्ति तरवो मुग्धवधूटीमिव च्छायाम् ।।१६।।

सुमित्रः —देव, तदेतस्मिन् अवसरे सुरेणुभूभागतो गतो रजनिकरः करणतापनाशाय मृणालिकानां कासारं सारञ्चात्र ज्वलत्सु दिनमणिमणिषु वाचंयमेषु कोप्रष्टिकेषु ताम्यत्सु पथिकेषु तप्ते पिशुनमनसीव सरसि प्रसरति चण्डमहसि धर्मक्षयादिव तरुणकिसलयच्छायाधिष्ठितासु वनदेवतासु रविकिरणेष्वपि तरुपत्रान्तरालानि निजतापभियेव गाहमानेषु, तरुष्वपि नवकिसलयच्छलेन जलार्थनाय रसनां प्रसारयत्सु, चण्डोद्द्योतभियेव पथिकवारणार्थं करान् प्रसार्य स्वयमपि मन्दीभवति भगवति पद्मबन्धौ विहस्तस्यापि जगतो रामणीयकमाकलयतु देवः ।

तथाहि—

कालेऽस्मिन् प्रथमानसूरकिरणव्याजृम्भदम्भोजनि-
स्फायत्कोशगलन्मरन्दमदिरापानप्रमत्तालिनि ।
जाने पक्ष्मपुटानि पक्ष्मलदृशामाश्रित्य चेतोऽजनि,

छायेच्छावशतः कटाक्षक्षपणाद् बाणान् मुहुर्मुञ्चति ॥२०॥

तदस्मिन् गुञ्जदलिपुञ्जवञ्जुलकुञ्जमञ्जरीरजःपिञ्जरिते शिञ्जानमञ्जीरराजिरुचिररणितमदकलकलहंसमण्डलीरञ्जिते स्वमरीचिनिचये चमत्कारवञ्चितचन्द्रजित्वरे स्फाटिकमयचत्वरे क्षणमुपविश्य मनोविनोदमनुभवतु देवः । (सर्वे परिक्रम्य यथोचितमुपविशन्ति)

कृष्णः —(विलोक्य) वयस्य, पश्य पश्य—

अवतरति गगनशिखरात् चरमगिरिं पद्मिनीबन्धौ ।
नयतीव शाखिनिवहः प्राचीमुत्सङ्गतः इछायाम् ॥२१॥

विदूषकः —वअस्स, पेक्ख पेक्ख । सिहरमेत्तम्मि ठिदाइं रइणो जरठवाणररंगाणुकरणाइं किरणाइं उव्वहंता तरुणोणुहरेंति तुह सिरिअं । [वयस्य, पश्य पश्य । शिखरमात्रे स्थितानि रवेः वृद्धवानररंगानुकरणानि किरणान्युद्वहन्तः तरवोऽनुहरन्ति त्वच्छ्रियम् ।] (परितो विलोक्य) हीणामहे ! मक्कंगसरिच्छाइं दिसामुहाइं भअत्तमसेण किदाइं । [आश्चर्यम्, मत्तङ्गसदृशानि दिशां मुखानि भवत्तमसा कृतानि ।]

श्रीदामा —सखे, सत्यमुक्तं सारायणेन । यतः—

अस्तपातुकघर्मांशुकिरणारुणिताञ्चलम् ।
वस्तेऽन्तराले तिमिरश्यामलं जगदम्बरम् ॥२२॥

गालवः — भगवन्, पश्य पश्य ।

विगलितकिरणावलीनिकायं,
दिनमणिमण्डलमञ्जसा विभान्ति ।
प्रणयकुपितहूणसुन्दरीणां,
वदनसरोरुहसञ्चितोपमानम् ॥२३॥

विदूषकः —ता उ जुअं ज्जेव्व किं ण भणीअदि मक्कडमुहसरिच्छो त्ति । [तद् योग्यमेव किं न भण्यते मर्कटमुखसदृश इति ।]

श्रीदामा — **यैर्भानुना जगन्नद्धं तद्धस्तैरेव रश्मिभिः ।**
दिष्ट्या स पात्यतेऽम्भोधौ न स्वकर्म भुनक्ति कः ॥२४॥

गालवः —भगवन्, पश्य पश्य ।

दिशा निर्वासितो दूरं शक्रस्य महसां निधिः ।

वारुणीं तरसा याति,

श्रीदामा — ......क्व त्रपा विगतांशुके ॥२५॥

विदूषकः —(कर्णौ पिधाय परिसर्पन्) मह दासीउत्तिआ झिल्लिआ तिमिरस्स झिल्लरीव वादेंता कण्णाइं बहिरेंति। [मम दास्याः पुत्राः झिल्ल्या तिमिरस्य झल्लरीव वादयन्तः कर्णौ बधिरयन्ति।]

गालवः — तप्तायःपिण्डमिव रविं क्षिपति काललौहिकोऽम्बुनिधौ।
धूमं तमोऽस्य शङ्के सूत्कारं झिल्लिझाङ्कारम् ॥२६॥

सुमित्रः —इतः पश्यतु देवः —

अस्तमस्तकचरे दिवाकरे,
हा कथं कुमुदिनीहृदीशितुः।
आस्यमस्य करवाणि सम्मुखं,
निर्मिमील नलिनीति लज्जिता ॥२७॥

कृष्णः —सखे, पश्य पश्य

तिमिरमयनीलशाटीनकलितपाटीरबिन्दुसदृशेन्दुः।
तिमिराभिसारिका सा विगलितहंसाऽभवत् प्राची ॥२८॥

सुमित्रः —देव, क्रमेण क्रमेलककण्ठकडाररुचिनिचयरञ्जितसान्ध्ये रागे विरते उन्मिषत्सु दलद्दलनिवहचलदलिपटलपेपीयमानमकरन्देषु कुमुदेषु समानदुःखतया नलिनीमाश्वासयितुमिव तटात् तटान्तरं सञ्चरत्सु प्रियविरहखेदजन्याक्रन्दभीषितनक्रेषु चक्रेषु नीडोन्मुखेषु विहगेषु स्वस्ववासोत्कण्ठितेषु वनचारिषु निद्रातन्द्रालुषु प्राणिषु दरालम्बितजीवेषु जीवञ्जीवेषु मान-प्रसादपरवशवनिताहुङ्कारमुखरेषु वलभीगृहेषु इतस्ततः सञ्चरन्तीषु दूतीषु चन्द्रशालापरिष्कारपरासुपरिचारिकासु, उरीकृतनीलपटासु कुलटासु, पिनद्धकनकमणिकासु गणिकासु, प्रवर्तितासु परितः प्रदीपकलिकासु अकाण्डमेव स्खलतीव नभसस्तमोगुणो देवानां, प्रसरतीव प्रसाधनविधौ चिकुरोत्करो दिगङ्गनानाम्, स्फुरतीव नीलपटावगुण्ठनविधिर्भुवाम्, पिनद्धेव गरुडमणिभूषां रोदसी, प्रसृतेव कामिजनजयाय भगवतो मकरकेतोः कुञ्जरराजिरिति धियं जनयन्नञ्जनाद्रित इव, गिरिकन्दराभ्य इव, गहनादिव, असतीकटाक्षसहस्रादिव, खलजनमनःसन्तानादिव, आविर्भवत्कलुषमय इव, मोहमय इव, अज्ञानमय इव, शक्रमणिमय इव, नीलोत्पलमालामय इव, स्वर्ग इव, स्वच्छन्दसञ्चरत्कौशिकः कलिकाल इव, लुप्तवर्णविवेको,

दिवस इव खचितद्योतसुभगो, अनीतिभागिव तेजोरहितो, अनङ्ग इव नयनहारी, योगीव समीकृतोच्चावचस्थितिः, रागीव कान्तारागप्रवृत्तस्तिमिरोदधिः कामपि वेलामतिक्रम्य वर्धति। यस्मिँश्च न मही,न द्यौर्न दिशो, न रोदसी, न तरवो, न नगा, न निम्नानि, न विहगा, न मनुजा, न पशवो नयनपथमवतरन्ति।

कृष्णः —(परितो विलोक्य)

अनध्यायस्तादृक् निखिलमहसामुद्भवभृतां,
निषेधो नेत्राणां प्रसरणविधिः कौशिकदृशाम् ।
तिरोभावोऽर्थानामहह कुलटामोहनकला-
महाध्वान्तस्कन्धः शिव शिव जगद् व्याकुलयति ॥२९॥

विदूषकः —अम्महे बलामोडिअ तेजाइं मोडिअप्फुरंतेग इमिणा जोदिरिंगणावद्दारेण मुहं उज्जलीयदि। [अहो ! बलादुन्मूल्य तेजांसि उन्मूल्य प्रस्फुरता अनेन ज्योतिरिङ्गणापद्वारेण मुखमुज्ज्वलयति ।]

कृष्णः —(सस्मितम्) अपशब्दभृदेव मूर्खस्य मुखम् ।

सुमित्रः —इतः पश्यतु देवः । प्रनृमरतिमिरमकरालयडिण्डीरपिण्डपङ्क्तिरिव पुरन्दरहरिति दरीदृश्यते प्रसादः ।

कृष्णः —(विलोक्य) अहो ! प्रत्यासन्नोदयो भगवान् तुषारकरः ।
(विमृश्य)

अप्राप्तोदय एष एव तरसा जिग्ये तमः सन्ततिं,
जीवञ्जीवकुलस्य जाड्यमहरच्चञ्चूपुटानामपि ।
मौनं कैरविणीगणस्य बिभिदे मानं मिथः कामिनोः,
किं कर्त्ताभ्युदितस्तुषारकिरणस्तन्नैष जानीमहे ॥३०॥

सुमित्रः —(ऊर्ध्वमवलोक्य)

रविरथहलावकृष्टे तिमिरौघसमीकृते नभःक्षेत्रे ।
वापयति कालहलिकः क्रमशो नक्षत्रबीजानि ॥३१॥

गालवः — भगवन्, पश्य –

बद्धान्तरान्तरा किमु तारामिषतोऽम्बरं क्षिप्ता ।
तिमिरमयनीलवर्णे कालो निर्माति चित्रपटीम् ॥३२॥

अपिच –

लेपिततमिस्रगोमयनीले गगनाजिरे रजनी ।
रचयति तुरङ्गमालास्ताराकपटेन पिष्टमयीः ॥३३॥

श्रीदामा —वयस्य, इतः पश्य –

दरकिरणावलिभस्मच्छुरितं शोणं प्रगे परिनिखातम् ।
होतुमिवोदयमानं शशिनं दहनं समुद्धरति कालः ॥३४॥

विदूषकः —(सहासम्) अंबो, चंदणकप्पूरपफंस-सीअलो वि अम्मिअकिरणो दहणत्तणेण इमिणा वण्णिज्जइ । ता एसो पदीविदजठराणलो हुविस्सदि । खुधिओ बह्मणो सव्वं अग्गिं च्चेअ देखइं । अहं उण अत्तणो पकिदीए एव्वं जाणेमि । [अहो' चन्दनकर्पूरस्पर्श-शीतलोऽपि अमृतकिरणो दहनत्वेनानेन वर्ण्यते । तदेषः प्रदीपितजठरानलो भविष्यति । क्षुधितो ब्राह्मणो सर्वमग्निमेव पश्यति । अहं पुनरात्मनः प्रकृत्यैवं जाने ।]

कृष्णः — (सस्मितम्) त्वं तावद् वर्णय मृगाङ्कम् ।

विदूषकः —सरस्सइं हुक्कारेमि । (सप्रणिधानं स्थित्वा) वअस्स,

सुणु — पुव्वदिसाए भालथलीए ।
चंदणबिंदु जिंभइ इंदु ॥३५॥

[सरस्वतीमाकारयामि । (सप्रणिधानं स्थित्वा) वयस्य, शृणु
पूर्वदिशायाः भालस्थले
चन्दनबिन्दुर्जृम्भते इन्दुः ।]

कृष्णः —अहो, ! सरस्वतीप्रसादः ।

विदूषकः —(सगर्वम् । श्रोदामानं निर्दिश्य) ण हु तव वअस्सा एआरिसा ज्जेव होंति । [न खलु तव वयस्या एतादृशा एव भवन्ति]

सुमित्रः —देव, पश्य । उदयगिरि-परिसरकुरुविन्दकन्दलप्रभाजालैरिव कुमुदिनीं स्वपादस्पर्शैरभिमर्शयतो रवेः कोपैरिव तिमिरकुम्भिकुम्भविघट्टनोच्छलल्लोहित-धाराभिरिव विरहिणीनयनकोणप्रभाभिरिवालोहितः पूर्वदिगङ्गनाकेतककर्णपू-

रायितैकेकिरणः ततो दुर्वर्णभल्लसवर्णकतिपयकरवारित-तिमिरवारणः सम्प्रति प्रतिककुभं सञ्चारितमयूखनिवहबहलप्रभापटलपूरणैः वर्षद्भिरिव पटीरद्रवं किरद्भिरिव घनसारक्षोदानुद्धूलयद्भिरिव पटवासधूलीः प्रसारयद्भिरिव मुक्ताचूर्णानि कलयद्भिरिव वर्णान्तरशून्यां विरञ्चिरचनां सुधालिप्तामिव स्फटिकघटितामिव धौतोत्तरीयप्रावृतामिव रोदसीं कुर्वन् नभस्तलमलङ्करोति मृगलाञ्छनः। यस्य च प्रसरति महसि क्षीरसारिणीमिव विशिष्य प्रसूनानीव तरवः पुण्डरीकानीव सरांसि दधति।

कृष्णः ––(परितो विलोक्य। सहर्षम्) अहह,

आरुण्यं दधता ततो निपतिता किं चारुणी सेवना-
दभ्युद्गीर्णमनेन कर्णगुरुणा प्राक् पीतमन्धन्तमः।
यावत्तावदुदञ्चदंशुपटलीव्याजस्फुरन्मार्जनी
सङ्घातैः प्रणयीव निह्नवपरो जैवातृको मार्जयत् ॥३६॥

गालवः –– भगवन्,

ऋक्षार्भकैरन्वनुगम्यमानौ,
शकुन्तकोलाहलकैतवेन।
मिथो दिवारात्रमिमौ रवीन्दू,
तिरस्क्रियां व्योमतले रमेते ॥३७॥

कृष्णः –– वयस्य, स्वोत्कर्षः सर्वमपि सुखयति। यतः –

अपहाय रागिणीमपि सन्ध्यां मामेति शिशिरांशुः।
इति मुदितेव तमिस्रा तारापुलकान् समुद्वहति ॥३८॥

(क्षणं निर्वर्ण्य)

गालवः –– **सन्ध्यानले परिनिधाय शशाङ्कबिम्बं,**
भ्राष्ट्रं नु भर्जयति माघवनी दिगेषा।
श्रीहीनमन्ददलमानविकीर्णलाजा—
स्तारामिषेण गगने परितः पतन्ति ॥४०॥

कृष्णः ––(क्षणं विलोक्य)

सन्ध्यानले गगनभाजनगं विपाकं,
ताराचरं तिमिरनाशनहेतुभूतम्।
चन्द्राङ्क (त) स्सरमुदीक्ष्य विहङ्गराव-
कौलीनतः किमनुशोचति कालमन्त्री ।।४१।।

विदूषकः —वण्णिदं वण्णिदं णिअरुआणुरुवं। सुणु-एव्वं वण्णीअदि। [वर्णितं वर्णितं निजरूपानुरूपम्। शृणु-एवं वर्ण्यते] (सर्वे सस्मितस्तिमितभावेन शृण्वन्ति।)

भरिऊण रोअसीरा कुहरं णूणं णिजाहिं जोण्हाहिं।
उवरिट्ठिदो मिअंको कौंदरपाएहिं पहइंतो ।।४२।।

[भरित्वा रोदस्योः कुहरं नूनं निजाभिर्ज्योत्स्नाभिः।
उपरि स्थितो मृगाङ्कः आवर्तयते पादैः प्रहरन् ।।]

कृष्णः —साधु वयस्य साधु। दूरं बुद्धिः प्रसादं प्रापिता।

विदूषकः —सुण्णंतो जणो वि। [शृण्वन्तः जना अपि] (पुरोऽवलोक्य) वअस्स, पेख्ख पेख्ख-

जोण्हाणलपक्खालिअ-गअणअले दिण्णदिट्ठीए।
पीईसपाणकज्जं हा विसुमरिअं चओरीए ।।४३।।

[वयस्य, पश्य पश्य-

ज्योत्स्नानलप्रक्षालित-गगनतले दत्तदृष्ट्याः।
पीयूषपानकार्यं हा विस्मृतं चकोर्या ।।]

श्रीदामा —(क्षणं विमृश्य) प्रदोषरक्तेन रोहिणीं गच्छता ज्येष्ठामासादयता मूलमतिक्रमता शशिना-

अत्रेर्नेत्रमलेन लाञ्छनभृता लीनेन वारांनिधौ,
स्वैरं मन्दरपादपङ्क्तिविकटाघाताहतीर्बिभ्रता।
जग्धेन त्रिदशैर्विभज्य बहुशः क्षीणेन लोको यथा,
रज्यत्वेन तथा न पद्मपतिना—

(विमृश्य) अथवा- कष्टोऽनुरागक्रमः ।।४४।।

गालवः —भगवन्, मैवं मैवम् । यतः - राम इव लक्ष्मणाञ्चितः, कृष्ण इवानुराधागामी, विलासीव कुवलयोल्लासितकरः, तरुरिव रुचितचकोरकश्चक्राङ्गभिन्नशकुन्त इव मनसा जातः कस्य न मदयति मनो मृगाङ्कः ।

कृष्णः —(समन्ताद् अवलोक्य । सहर्षम्)

प्रतिदिनमयं नायं नायं सुधोदधितः सुधां,
गगनविपणि चन्द्रः सान्द्रीं चकोरचमूरिभाम् ।
करनलिकया चञ्चच्चञ्चूपुटाः परिलेहयन्,
वणिगिव पुरो विक्रेतुं नु प्रसारयति स्फुटम् ।।४५।।

गालवः --(विलोक्य) सम्प्रति जगति-

'विगलितसुरसिन्धुस्त्रोतसा पूरिता नु,

श्रीदामा — **प्रसृमरहरहासारोपसङ्गोपिता नु ।**

विदूषकः --ण क्खुहु — अमरणरवइकित्तिफारफंफालियेयं,

[न खलु — अमरनरपतिकीर्तिस्फारस्फालिकेयम्]

सुमित्रः — **दधिजलनिधिलीलालम्बिनी भाति सृष्टिः ।।४६।।**

विदूषकः —वअस्स, ता लहुं गदुअ णिअबह्मणीए सआसादो कूरं लोणअं अ गेण्हिअ आअच्छामि । जण इमिणा दहिणा उअराणलस्स आहुदि णिव्वत्तेम्मि । [वयस्य, तल्लघु गत्वा निजब्राह्मण्याः सकाशाद् भक्तं लवणञ्च गृहीत्वा आगच्छामि । तेनानेन दध्ना उदरानलस्याहुतिं निर्वर्तयामि ।] (सर्वे हसन्ति)

(प्रविश्य कञ्चुकी)

कञ्चुकी —देव, इतः पारिजातं निकषा कषायितलोचनया-(इत्यर्धोक्तौ कर्णे) एवमवम् ।

विदूषकः —(सवितर्कम्) सुणिदं सुणिदं भामए । [श्रुतं श्रुतं भामया]

कृष्णः —कथमिव ?

विदूषकः —ताए विण्णा कसाइदच्छी अण्णा ण होई । [तया विना कषायिताक्षी अन्या न भवति ।]

कृष्णः —इतरः क्व नारीनिवहः ?

कञ्चुकी —नातिदूर एव रुक्मिणीदेवीमुख्यं पुरन्ध्रीकदम्बम् ।

कृष्णः -(विमृश्य) सुमित्र, त्वमशून्यं कुरु स्वनियोगम् । वयमपि तेनैव पथा भामामाननपुरस्सरं सम्भावयामो भामिनीनिवहम् ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

तृतीयोऽङ्कः ।

  

अथ चतुर्थोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति कामिनीकदम्बम्)

कृष्णः --(विलोक्य । सानन्दम्) वयस्य, पश्यसि पुरःसरकञ्चुकिनिचयकलितराजतालीदण्डं पाकसुगन्धितैलानिलनासीरचरदासीसहस्रवलितवेलं निर्मलनिर्यद्रत्नरश्मिशबलवासोरेणुना जनिततरङ्गरङ्गं सजलं लावण्येन, सचन्द्रं मुखेन, सामृतं स्मितेन सप्रवालं दन्तच्छदेन, समौक्तिकं रदमण्डलेन, सशुक्तिकं कपोलेन, सकम्बु कण्ठेन, सशैलं स्तनेन, सलतं भुजेन, सशैवलं रोमलतिकया, सावर्तं नाभिना, सपुलिनं जघनेन, सदीपं नितम्बेन, सरम्भमूरुभिः, सहंसं कटकेन, सकमलं चरणेन, सरत्नं नखैः, सपन्नगं वेणीबन्धेन, सहालाहलं कटाक्षैः, सधन्वन्तरिं प्रेम्णा मादृशानां समन्मथगदस्य नारीनिवहं न दीनम् ।

विदूषकः --अथ इं । जस्स पवणंदोलिरकंदोट्टकोटिणट्टप्पअट्टमहुअरसरिछाइं कडक्खाइं पसरिद-विविहरअणकिरणमिलिदाइं गअणछलंमि कलिंदगिरिणंदिणि व्व महेंदधणु व्व वत्तपोम्मपुंडरीअणिलुप्पलरिछोलि व्व दिसासु ताणं जक्खकद्दमंगरागव्व महिम्मि विरुख्खेसु वसंतसिरिअं व्व थलीसु चित्तकम्मव्व तुअ कंठम्मि वेजअंतिव्व महसिरम्मि परिसमअदिज्जमाणसेहरं व्व कुणंति । [अथ किम् ।

यस्य पवनान्दोलितोत्पलकोटि - नृत्यप्रवृत्तमधुकरसदृशाः कटाक्षाः प्रसारितविविधरत्नकिरणमीलिता गगनतले कलिन्दगिरिनन्दिनीव महेन्द्रधनुरिव वृत्तपद्मपुण्डरीकनीलोत्पलसदृशाभिरिव दिशासु तासु यक्षकर्दमाङ्गराग इव महत्स्वेव वृक्षेषु वसन्तश्रीमिव स्थलीषु चित्रकर्मेव तव कण्ठे वैजयन्तीव मम शीर्षे परिणयसमयदीयमानमानशेखरमिव कुर्वन्ति ।]

कृष्णः —(सस्मितम्) वयस्य, सत्यमासामपाङ्गभङ्गपरम्परया वैजयन्त्येव बद्धोऽस्मि । (किञ्चित् पुरोऽभिसर्पति)

रुक्मिणी —(अपवार्य) हंजे माहविए, इदो दिण्णदिठ्ठी अज्जउत्तो आअच्छदि । [सखि माधविके, इतो दत्तदृष्टिरार्यपुत्र आगच्छति]

माधविका —णहु णहु । बहलपरिमलपडला बहुदरमहुअरझंआरमुहरसिहरस्स पडंतपराअपुंजपिंजरिअफडिअमणिघडिअचत्तरोवंतभमंदकवोदपोदचओर - परहुअरमणिज्जस्स पारिजाअतरुस्स अहिमुहं तत्तभवं पचलिदो जउणाहो । [न खलु न खलु । बहलपरिमलपटलो बहुतरमधुकरझङ्कारमुखरशिखरस्य पतत्पराग - पुञ्जपिञ्जरितस्फटिकमणिघटित - चत्वरोपान्तभ्रमत्कपोतपोतचकोर - प्रभृतिरमणीयस्य पारिजाततरोरभिमुखं तत्रभवान् प्रचलितो यदुनाथः ।]

रुक्मिणी —ता वअंपि तहिं च्चेअ गच्छेह्म । [तद् वयमपि तत्रैव गच्छामः ।] (इति सर्वास्तथा कुर्वन्ति । कृष्णं प्रणम्य यथोचितमुपविशन्ति ।)

कृष्णः —(अपवार्य । भामां प्रति सहासम्) अयि प्रोषितमाने,

आविष्करोति कर्त्तारं दृक्कोणमरुणं यदि ।
कथं ते तन्वि वदनं चन्द्रमा इति गीयते ॥१॥

(भामा सलज्जं सगौरवं सस्मितञ्चाधोमुखी तिष्ठति)
(विलोक्य) अयि प्रिये,

क्षणमाविष्कृतमाना क्षणमभिदृष्टप्रसादमाधुर्या ।
घनलयनिर्मोकवती शशाङ्कलेखेव मां हरसि ॥२॥

विदूषकः —एदाअं एव्व बहुमदं । तिए रुप्पिणी देइण रुसुई । [एतावदेव बहुमतम् । तया रुक्मिणी देवी न रुष्यति ।]

(कृष्णः सस्मितं तिर्यगक्ष्णा पश्यति)

रुक्मिणी —अज्ज चाराअण, अम्हाणं उण रुसणपणएहिं कालो हीरीअदि । तेण ण अच्चरिअं । तुमं पढमं रूस । जेण अम्हारिसीतो वि पढमं अज्जउत्तो तुमं विण्णविस्सदि । [आर्य चारायण, अस्माकं पुनः रोषणवतामयं कालो हीयते । तेन न आश्चर्यम् । त्वं प्रथमं रूषय । येन अस्मादृशीतोऽपि प्रथममार्यपुत्रस्त्वां विज्ञापयिष्यति ।]

कृष्णः —(रुक्मिणीं विलोक्य) वयस्य, पश्यसि कुतूहलम् ।

कम्त्रुगतफुल्लपङ्कजमध्ये मुक्ता निबध्द्रपर्यन्ते ।
खञ्जनयुगदुरवापं प्रवालनद्धं वहति पीयूषम् ॥३॥

(सस्पृहं तदधरमङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां गृहीत्वा)

विशददशनरश्मिभारभाजः,
सुदति तवाधरपल्लवेऽत्र रेखाः ।
परिवहदमृतप्रणालिकानां,
कुलकुतुकक्रममञ्जसा दिशन्ति ॥४॥

विदूषकः —वअस्स, जंबवदी परिप्फुरदि । तं वि संभावेदु भवं । [वयस्य, जाम्बवती परिस्फुरति । तामपि सम्भावयतु भवान् ।]

कृष्णः —(अपवार्य) साऽपि सम्भावनीयैव । (इति कैतवेन परिक्रम्य तामुपेत्य सरागम्) अयि सुदति, दरस्मेररदवाससा कुतो न कृतार्थीक्रियतेऽयं जनो भवत्या । यतः—

दन्तान्तरालिकास्ते श्यामलरेखा हरन्ति मे चित्तम् ।
अधरसुधासम्बन्धादुदिता इव शैवलारोहाः ॥५॥

जाम्बवती —रुप्पिणीभामाप्पमुहाणं पेम्मगंठिगंठिदिस्स अज्जउत्तस्स कुदो ईरिसजणम्मि अणुराओ । [रुक्मिणीसत्यभामाप्रमुखानां प्रेमग्रन्थिग्रन्थितस्यार्यपुत्रस्य कुत ईदृशजनेऽनुनयः ?]

कृष्णः —(पार्श्वयोरवलोक्य । शनैः) भामिनि, मैवं मैवम् ।

यद्यप्यस्ति लतावृन्दं मरन्दभरतुन्दिलम् ।

तथापि षट्पदस्यैकं माधवी काऽपि जीवितम् ॥६॥

विदूषकः –(अपवार्य) वअस्स, अण्णाओ वि तिख्खकडक्खेहि पेख्खंदि। [वयस्य, अन्या अपि तीक्ष्णकटाक्षैः पश्यन्ति।]

कृष्णः –(परिक्रम्य। काञ्चिदवलोक्य) वयस्य, अनया–

पश्चान्निबद्धः सुदृशालकाली-
गुच्छो न बध्नाति मनांसि केषाम्।
निसर्गजिह्मस्य मलीमसस्य,
युक्तः स्वबन्धेषु परावमर्शः ॥७॥

(अन्यां प्रति)

तव लम्बितकुन्तकावली,
दरदृष्टाननरोचिरोचितः।
मम नेत्रचकोरकोऽचरत्,
तिमिरान्तश्चरचन्द्रिकाचयम् ॥८॥

(अपरां सस्पृहमवलोक्य)

अव्याहतं वरारोहे पङ्कजत्वं दृशोस्तव।
पक्ष्मप्रान्तपरिष्वक्तकज्जलग्नेच्छपङ्कयोः ॥९॥

वयस्य, न कथं नयनपथं सरीसरीति सरीतिरक्षिविक्षेपैरनङ्गाशुगानां परिहृतमनोजनिर्बाधा राधा।

विदूषकः —दूराहितो दीसइ माणंसिणीव्व केसररुख्खतलम्मि तत्तहोदि मिइव्व - पडंत बाहुधेवरी राहिआ। [दूराद् दृश्यते मनस्विनीव केसरवृक्षाधस्तत्रभवती मृगीव पतद्बाहुपाशा राधिका।]

कृष्णः —(ससम्भ्रमम्) क्व सा क्व सा ?

विदूषकः —एदु एदु भवं। [एतु एतु भवान्]

कृष्णः —(परिक्रम्य। अवलोक्य च) वयस्य, किममुष्या हावभावकौशलं कथयामि ? तथाहि मम–

चेतो निकृन्तति मयि प्रभुर्निविशेष-
मस्यै नमः कृतवति प्रथमानुरागे ।
न्यग्भङ्गुरीकृतविलोचनमादराव-
हेलाविलं नमितमेककराञ्चलेन ॥१०॥

विदूषकः —तुमं पेखिअ कुडिलावंगेण रत्तपोम्मराइहिं व्व अच्चेदि । [त्वां प्रेक्ष्य कुटिलापाङ्गेन रक्तपद्मराज्येव अर्चयति ।]

कृष्णः —(सहसोपसृत्य)

तत्राधिरोहत्यथ चित्तमार्गं,
सम्भावनां यस्य वरोरु कुर्याम् ।
मानञ्च पश्ये किमकारणैव,
कार्योद्गतिः शास्त्रदृशामभीष्टा ॥११॥

अपि च — श्रयति नवानपराधे मयि सुतनो ! कस्य वा हेतोः ।
केरलकुरङ्गनेत्रा चिकुरावलिचातुरीनयनम् ॥१२॥

तदलमनेन लीलाप्रत्यूहभूतेन मयि मानोज्जृम्भितेन ।

(इति पादयोः पतितुमिच्छति)

राधा —(कराभ्यामवधृत्य) णव्वं उइदं पूआरुहेसु जणेसु अदिसइदं । जइ भासाप्पमुहासु तुम्हाणं चेदवुत्ती ता किमणेण मुहमेत्तराएण गहिएण । [नैवमुचितं पूजार्हेषु जनेष्वतिशयितम् । यदि भामाप्रमुखासु तव चेतोवृत्तिस्तत् किमनेन मुखमात्ररागेण गृहीतेन ।]

कृष्णः —साधु वयं शाखामृगतुलां नीत्वोपलब्धाः ।

विदूषकः —तत्तहोदीए अहं वण्णिदो । ता तुम्हे दुवे वि गहिदहिअराआ हुविअ रासं पउत्तेह । [तत्रभवत्याऽहं वर्णितः । तद्युवाभ्यां द्वाभ्यामपि गृहीतहृदयरागौ भूत्वा रासं प्रवर्तयतम् ।]

राधा —(सस्मितम्) अज्जसाराअणेण किदो विवेओ । [आर्यसारायणेन कृतो विवेकः ।]

कृष्णः —(राधाया अधरं धृत्वा)

दरनमिताधरमध्यगरेखामधुराधरे तवाहरति ।
सारिणिरिवोच्छ्रितानाममृतानां कल्पना विधिना ।।१३।।

(इति पातुमिच्छति । राधा मुखं व्यावर्तयति ।)

कृष्णः –(निपुणं विलोक्य)

दरलम्बितचिकुराङ्कुरशिखाविषक्तैणनाभितिलकस्ते ।
सुन्दरि ! युवजनमनसां मनोजनिक्षेपणीं श्रियं वहति ।।१४।।

राधा —अज्जउत्तस्स प्पणएण कहं वा संभावइज्जइ ? [आर्यपुत्रस्य प्रणयेन कथं वा सम्भाव्यते ?]

कृष्णः —(गाढमालिङ्ग्य परिचुम्ब्य च) प्रिये, सर्वं युक्तमेव सम्भाव्यते ।

हरिताभिरिव स्निग्धश्यामाभिः सुखसवित्रीभिः ।
त्वद्दृष्टिभिः सुनयने ! रज्येऽहं ग्रन्थिलाभिरपि ।।१५।।

(इति तां करे धृत्वा उत्थायाश्लिष्यन्नेव परिक्रामति)

विदूषकः –अहं पुट्ठीण एक्कलो ण आअमिच्छामि । गेहं गदुअ बह्मणीं आलिंगिअ तुमं व्व रासम्मि भवामि । [अहं पृष्ठत एकाकी नागमिष्यामि । गृहं गत्वा ब्राह्मणीमालिङ्ग्य त्वामिव रासे भवामि ।]

कृष्णः –एह्येहि त्वामपि कयाचिद् भुजिष्यया योजयामि ।

(इति तेन सह परिक्रामति)

गालवः –(सकरतालमुत्प्लुत्य । साश्चर्यहासम्) भगवन्, पश्य पश्य । प्रतिकान्तमेकैकः कृष्णदेवः । क्वचित् स्वकचग्रहैः, क्वचिदाश्लेषैः, क्वचिद् दन्तपदैः, क्वचिन्नखक्षतैः, क्वचित् परिहासैः, क्वचिच्चुम्बितैः, क्वचिदुच्चचुचूकाभिमर्शैः, क्वचिद्भुजवल्लीवेल्लितैः, क्वचिन्नृत्यैः, क्वचिद् वाद्यवादनैः, क्वचिद् गानैः, क्वचित् काव्यनाटकाख्यायिकाव्याख्यानैः, क्वचिच्चतुरङ्गैः, क्वचित् पाशैः, क्वचित् पुष्पावचयैः, क्वचिज्जलक्षेपैः, क्वचिद्दोलाविलासैः, क्वचिन्मल्लयुद्धैः, क्वचिदधरसुधाग्रहैः, क्वचिन्मिथःश्लिष्टाङ्गुलिभ्रमणैः, क्वचित् समस्यादानपूरणैः, क्वचित् पतत्रिकुलत्रासनैः, क्वचिन्नानाबन्धयुतरतिसुखैः, क्वचित् तिरस्क्रियाभिः, क्वचिद् रतान्ततान्तवनितापरिचरणैः, क्वचिन्मानिनीचरणपातैः,

क्वचिन्मुग्धवधूवञ्चनैः, क्वचित् सुरतश्रमाभिनयैः, क्वचिच्चन्द्रिकावलोकनचमत्कारैः, क्वचिद्वसनभूषाव्यत्ययैः, क्वचित् सीधुपानैः, क्वचिन्मदचेष्टितैः, अधिदेवताभिरिव हावभावानां, प्राणप्रायाभिः शृङ्गारस्य, जीवातुभिर्मदनस्य, सभाभिर्विभ्रमाणां, कुलवसतिभिश्चातुर्याणां, मोहिनीभिर्लोचनानां, आकर्षिणीभिर्मनसः, मारिणीभिः शमस्य, उच्चाटिनीभिः धैर्यस्य, वसन्तमयीभिर्भाषितेन, शरन्मयीभिर्गतेन, प्रावृण्मयीभिस्तनुलताभिः, प्रेमघटिताभिरिव लीलामीलिताभिरिव प्रमदाभिः। कयाचिन्नारायणबाहुलतयेव चक्रभ्रमणपरया, कयाचित् समुद्रवेलयेव घटिततालया, कयाचिद् राशिमालयेव समकरचाप्यकलिततुलया कयाचिन्मुनिमनीषयेव समानया क्रीडति।

श्रीदामा —(स्वगतं ध्यात्वेव सरोमाञ्चम्) विश्वात्मकस्य भगवतः कियानेष नानारूपपरिग्रहो लोकलीलालाघवमात्रफलकः। (प्रकाशम्) वत्स, साधूपलक्षितं त्वया विस्मयपदम्।

विदूषकः —(विलोक्य) अरे बडुआ, एदेसु को दाव अह्म पिअवअस्सो अहवा अहं चेअ गदुअ जाणिस्सं। (किञ्चिदुपसृत्य विलोक्य च) एसो पिअवअस्सो वावडो जलकेलिए। [अरे बटुक, एतेषु कः तावदस्मत्प्रियवयस्यः? अथवा अहमेव गत्वा ज्ञास्ये। (किञ्चिदुपसृत्य विलोक्य च) एषः प्रियवयस्यः व्यापृतो जलकेल्याम्।]

द्विजपतिपाणिस्पृष्टा मालिन्यं नलिनि निर्भरं धत्से।
अधिरजनि गर्भगैरपि कोशोत्पीडं तु भुज्यसे मधुपैः॥१६॥

इति णलिणिं उवहसंतो मं संभावेदि। [इति नलिनीमुपहसन् मां सम्भावयति] (अन्यमुपसृत्य) एसो वि [एषोऽपि]

यूथिनि चम्पककलिकां मधुप त्यक्तेति नैव निन्देथाः।
त्वमिव न सा मधुपानां सङ्गे सन्तोषमावहति॥१७॥

इति जूदिअं आलवंदो णमं पेक्खदि। (अपरमभिगम्य) एसो वि माणंसिणीए अग्गचरणलोठिदमोलि।

मणंसिणीअतीए परमुहालिंगणम्मि पसभदिण्णो।
वेणीतेल्ल महल्ले तुज्झ उरे धारिओ व्वणिअणेहो॥१८॥
[इति यूथिकामालपन् मां पश्यति। (अपरमभिगम्य) एषोऽपि

मनस्विन्या अग्रचरणलोठितमौलिः ।

मनस्विन्याः परमुखालिङ्गने प्रसभदत्तः ।
वेणीतलप्रलग्ने तवोरसि धारितर्वाणतस्नेहः ॥१८॥

इति खंडिदाए उवलहिज्जंदो ण मं आलवदि । [इति खण्डिताया अभिलपन् न मामालपति ।] (परं गत्वा) एसो वि [एषोऽपि]

लम्बिकुन्तलसहासिकावशा-
दस्तु ते नयनयोरराखिला ।
हा पचेलिमसुधासवर्णया,
त्वद्गिरा क्व समशिक्षि सा गतिः ॥१९॥

इदि माणंतो कां वि अहीरहुढेल्लीं ण मं मणम्मि वि आणेदि । हंहो सव्वे वि समाणरूअवेसा हरिणा दीसंति । ता किं एदं इंदआलिअं अह काजव्वूहो, उद माआ, अहुवा दासीएउत्ता भुत्ताहविअ मं भीसअंदि । [इति मानयन् कामप्याभीरयोषितां न मां मनस्यप्यानयति । हंहो सर्वेऽपि समानरूपवेशा हरयो दृश्यन्ते । तत् किमिदमिन्द्रजालिकम्, अथ कायव्यूहः, उत माया अथवा दास्याः पुत्राः भूता भूत्वा मां भीषयन्ति ।] (क्षणं विमृश्य) पिअवअस्साणुकारिणो रत्तिचारिणो एदे च्चेअ । ता पिअवअस्सं हंकारिअ एदाणं दाणिं संतिप्पआरं अण्णेसेमि । [प्रियवस्यानुकारिणो रात्रिचारिण एते एव । तत् प्रियवयस्यमाहूय एतेषामिदानीं शान्तिप्रकारमन्वेषयामि ।] (इति हस्तमुद्यम्य) अहवा अहं जेव्व सिहं बंधिअ दंडकट्ठेण एदाणं अवणेहस्सं । [अथवाऽहमेव शिखां बद्ध्वा दण्डकाष्ठेन एतानपनेष्यामि ।] [इति दण्डकाष्ठमुद्यम्य ताडयितुमिच्छति । कृष्णः दण्डकाष्ठं करेणावष्टम्भयति ।]

विदूषकः —अबह्मण्णं अब्रह्मण्णं । गहिदो ह्मि महकेअरिआए दासीए उत्तेण भूदेण । ता परित्ताअदु परित्ताअदु प्पिअवअस्सो । अज्जाआरहिअ ण बह्मणाणं **गव्वं** उव्वहिस्सं । [अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम् । गृहीतोऽस्मि महाकेसरिणा दास्याः पुत्रेण भूतेन । तत् परित्रायतां परित्रायतां प्रियवयस्यः । अद्यारभ्य न ब्राह्मणानां गर्वमुद्वहिष्ये ।]

कृष्णः —(अश्रुतमिव दण्डकाष्ठं कर्षन् काञ्चिदङ्गनां प्रति)

युवजनचित्तोज्जयिनी रुचिरमहाकालमणियुक्ता ।

काञ्च्यपि वरोरु चित्रं मुक्ताकस्थस्य ममावन्ती ॥२०॥

(इति वदन् परिक्रामति)

विदूषकः —(किञ्चिदाकृष्टः पुनरपि) अविद अविद भो । परित्तादु पिअवअस्सो । [अविद अविद भोः ! परित्रायतां प्रियवयस्यः ।]

(कृष्ण दण्डकाष्ठं मुञ्चति । विदूषकः सत्वरं परिक्रम्य श्रीदाम्नः उदरं प्रविश्य) जाव पिअवअस्सो एदि ताव तुमं एदेहितो मं रख्ख । रख्खसं व्व मं दट्ठूण एदे गमिस्संदि । [यावत् प्रियवयस्य एति तावत् त्वं एतेभ्यः मां रक्ष । राक्षसमिव मां दृष्ट्वा एते गमिष्यन्ति]

श्रीदामा —(सस्मितम्) मा भैषीः । एह्येहि । त्वां यथा भूतानि न बाधन्ते तथा करोमि ।

विदूषकः —(श्रीदाम्नः पटाञ्चलेनात्मानमावृत्य तदुत्सङ्गञ्च प्रविश्य ।) तुमं वि बह्मणो ममव्व मा होदु । [त्वमपि ब्राह्मणो ममेव मा भवतु ।] (इति सचकितं पश्यन् तिष्ठति ।)

गालवः —भगवन्, पश्य पश्य --

कुञ्जोदरे रासरसाभियोगा–
च्छूमाञ्चितौ पद्ममुखीमुकुन्दौ ।
सङ्केतितं चञ्चललोचनाभ्यां,
समानवृक्षं परिबस्वजाते ॥२१॥

विदूषकः —विविहाइं भूदाइं कीलंति । पेखव पेखव । एक्को अज्जतमससीव्व विसिमरमोहो वणिअं गहिअ वणिअं पविसदि । [विविधानि भूतानि क्रीडन्ति । पश्य पश्य एकः अद्यतनशशोव विस्मरमोघो वनीं गृहीत्वा वनीं प्रविशति । (उभौ पश्यतः)

कृष्णः —(काञ्चित् प्रति)

मदनोपमर्दविगलितभूषणनिवहा मनो हरसि ।
पवनान्दोलनविच्युतकुसुमेव लता कुरङ्गाक्षि ॥२२॥

अपि च । तव—

सुभ्रु ममाशावरणः काञ्चनगौरीं रुचं कलयन् ।
हर इव नितम्बबिम्बो लोभयति मनोऽञ्जसा दृष्टः ॥२३॥

(अपरां प्रति सहासम्)

श्यामा अपि कुटिला अपि केशाः काञ्चीस्पृशो मुक्ताः ।
परमानन्दविधात्री काञ्ची कस्मान्नु मुच्यसे सुतनो ! ।।२४।।

गालवः —(विलोक्य) भगवन्नुपसंहृतनानारूपस्तत्र भगवान् वैयाकरण इव कृतैकशेषो दृश्यते ।

श्रीदामा —(स्वगतम्) स्वाद्वैतविभूतिं स्फोरयति तत्र युज्यते सर्वम् (प्रकाशम्) औषसिकी वेला तदुपरतो रासरसाद् वयस्य इदानीमिति मन्महे ।

विदूषकः —कहिं पिअवअस्सो ? (विलोक्य सत्वरमुपसृत्य च)वअस्स, दिट्ठिआ वअस्सेण जीवंतो अहं दिठ्ठोह्मि (वयस्य, दिष्ट्या वयस्येन जीवितोऽहं दृष्टोऽस्मि ।)

कृष्णः —किं तव ?

विदूषकः —तुए कहिं पि गदम्मि दुट्ठभूदेहिं तुह रूवं धरिअ अहं अहिहदो इमिणा वुढ्ढि-एण रक्खिदो ह्मि । [त्वया कुत्रापि गते दुष्टभूतैस्तव रूपं धृत्वाऽहमभिहतोऽनेन वृद्धेन रक्षितोऽस्मि ।]

कृष्णः —किं नायुधीकृतमब्रह्मण्यम् ।

विदूषकः —तेणच्चेअ एदस्स सआसं पाविदोह्मि देवेण । विभादकप्पाए विहावरीए ओहीणेसु तेसु तुमं दठ्ठूण ओससिदं मे प्पाणेहिं । [तेनैवैतस्य सकाशं प्रापितोऽस्मि दैवेन । विभातकल्पाया विभावर्या अहीनेषु तेषु त्वां दृष्ट्वा उच्छ्वसिता मे प्राणाः ।]

कृष्णः —कथं विभातकल्पा विभावरी ? (विलोक्य)

नीतः समुद्रं यादोभिर्भानुमानिति चन्द्रमाः ।
नक्षत्रजालसंयुक्तः पततीव गवेषितुम् ।।२५।।

श्रीदामा —(विभाव्य)

अनायि प्रसभं भानुरनया चरमां दशाम् ।
इतीव पश्चिमामाशां चन्द्रः पतति लोहितः ।।२६।।

गालवः — **अनुगम्य परापतिषुः कथमपि तारा नभःसरस्तीरात् ।**
आपृच्छतीव चन्द्रः शकुन्तकोलाहलैः प्रवसन् ।।२७।।

विदूषकः—साहु रे बुदुआ, साहु सिक्खिदोसि इमिणा जरठेण । तह वि अह्मादिसाणं सिक्खावणं अण्णं च्चेअ । जइ तिण्ण दिअहाइं मह अग्गहत्थाणं साहीणा कण्णा तुह होति तह पेक्खिस्ससि चंगत्तणं मदीए । [साधु रे बटुक, साधु शिक्षितोऽस्यनेन जरठेन तथाप्यस्मादृशानां शिक्षापनमन्यदेव । यदि त्रीणि दिवसानि ममाग्रहस्तानां स्वाधीना तव कन्या भवति तदा प्रेक्ष्यस्युत्तमत्वं मदीयम् ।]

(सर्वे हसन्ति)

कृष्णः—त्वया किञ्चिदायासितममुष्मिन् विषये मानसम् ।

विदूषकः—(सस्मितम्) अह इं । सुणोदु प्पिअवअस्सो । एक्कजीवणघडिदसरीरदो एव्व अमुंचंताणं पाणाणं चक्कवाअमिहुणाणं होंतीसु अंकवालीसु मिलिज्जंतदलाणं कुमुदिणोणं दोसं सहावत्थाणदाए विअ असहमाणाहिं णलिणीहिं जिह्म तदलाहिं व्व गहिदेसु तारिसरूवेसु लोहिदं पुव्वदिसाए वअणं दट्ठूण भीदेव्व चंदे अच्छमत्थअं गदे उवरद-रअणीविरहेणेव्व पंडुरिदेसु दीवेसु गदे गहिणिम्मि संपदं सोहग्गस्स धारिदुं त्ति चितिऊणव्व पहादसंझाणलम्मि पडंतीसु तारआसु पडंतससिकरेसु व्व जणेसु हक्कारअंतेसु विविहकूजिदेहिं सउंदेसु जगं अपुव्वं उव्वहइ सिरी । [अथ किम् । शृणोतु वयस्यः । एकजीवनघटितशरीरद्वय इव प्रमुञ्चतां प्राणानां चक्रवाकमिथुनानां भवतीषु अङ्कपालीषु मीलद्दलानां कुमुदानां दोषं सहावस्थानतयेवासहमानैः (नाभिः) नलिनीभिः जृम्भद्दलाभिरिव गृहीतेषु तादृशस्वरूपेषु लोहितं पूर्वदिशाया वदनं दृष्ट्वा भीते इव चन्द्रे अस्तमस्तकं गते उपरतरजनीविरहेणेव पाण्डुरितेषु दीपेषु गते गृहिणि सम्पदं सौभाग्यस्य धारितुमिति चिन्तयित्वा प्रभातसन्ध्यानले पतन्तीषु तारकासु उपरितः पतत्सु शशिकिरणेष्विव जनेषु कोलाहलवत्सु विविधकूजितेषु शकुन्तेषु जगदपूर्वमुद्वहति श्रीः ।]

कृष्णः—
प्रातः शकुन्तकलकलकलहान्निर्वास्य शीतकरम् ।
प्राची कलहान्तरितानुशयात् ताराश्रु पातयति ॥२८॥

(विलोक्य)

मरुति धृतकदम्बे कैरवे तोयलम्बे,
क्षतजमधरबिम्बे पश्यति स्त्रीकदम्बे ।
दिनकृति न विलम्बे दत्तपद्मावलम्बे,
चरमगिरिनितम्बे चन्द्रबिम्बं ललम्बे ॥२९॥

(पुरोऽवलोक्य) अहह, प्रियजनावलोकाय काष्ठाकारा अपि चेतन्ते वनिताः । यतः –

यास्यत्यद्य दिवामणिर्मम गृहानित्युद्गतानन्दथु-
स्तारापर्युषितप्रसूननिकरं सम्मार्जयन्ती मुहुः ।
सन्ध्यारागकुसुम्बिताम्बरवती सङ्केतवेलामिव,
प्राची वासकसज्जिकेव वयसां कोलाहलैः शंसति ॥३०॥

(विभाव्य । सस्मितम्)

आकाशाङ्गणसीम्नि शीतमहसा नक्षत्रमुक्ताफला-
न्याकीर्णान्यवलुप्य शान्तिविभवं निर्वास्य तं दूरतः ।
शंसन्तीति जरागमुद्गतमससन्ध्यानुरागच्छलात्,
प्राची वारविलासिनीव पुरतश्चण्डांशुमुत्प्रेक्षते ॥३१॥

गालवः —भगवन्, इतोऽपि रमणीयं वर्तते । तथा हि–

सितखगकृतलेहे चक्रचञ्चत्समीहे,
कलितविरहिमोहे नेत्रपीयूषदोहे ।
विसुमरमधुगेहे गन्धसम्भिन्नदेहे,
सरसिरुहसमूहे षट्पदो मोहमूहे ॥३२॥

सत्यभामा —(अपवार्य एकां प्रति) सहि, पेख्ख पेख्ख । माणंसिणीए व्व सोणाए पुव्वदिसाए हीरिदाइं णख्खत्तमोत्ताहलाइं उवेच्छंतो ससको गयणंगणाहिंतो संपदं विविहविविक्किररुदच्छलेन उवक्कोसंती सेलसिहरंतरिदेण रइणा दरपसरंतकरेण छित्ता खणे खणे पसण्णा होइ । [सखि पश्य, पश्य । मनस्विन्या इव शोणया पूर्वदिशया हृतानि नक्षत्रमुक्ताफलान्युपेक्षयन् शशाङ्कः गगनाङ्गणात् साम्प्रतं तां विविधविविष्किररुतच्छलेन उपक्रोशन्ती शैलशिखरान्तरेण रविणा दरप्रस्फुरत्करेण स्थिता क्षणे क्षणे प्रसन्ना भवति ।]

एका —एकस्सिं माणंसिणी कहं अवरस्सिं अणुरज्जेइ ? [एकस्मिन् मानवती कथमपरस्मिन् अनुरज्यते ?)

सत्यभामा —णं वण्णिदं चेअ अज्जउत्तेण वेसत्तिआ । (ननु वर्णितमेवार्यपुत्रेण विशेषतः)

विदूषकः —(सहासम्) सुणिदं सुदिगं सव्वाणं वि माणंसिणीणं एसो च्चेअ । (श्रुतं श्रुतं

सर्वासामेव मानवतीनामेष एव ।) (इत्यर्धोक्तौ)

भामा —(सस्मितं) चिट्ठ रे दुट्ठबह्मण, कदा वि पडिस्ससि गोअरेण समो तुमं मह गोअरे । (तिष्ठ रे दुष्टब्राह्मण, कदापि पतिष्यसि गोचरेण समस्त्वं मम गोचरे ।)

कृष्णः —(विलोक्य काञ्चिन्मुग्धां प्रति) सुन्दरि, पश्यसि ।

अदिवाकरमस्ततारकं गलितेन्दु क्षणमीक्षते नभः ।
गतबाल्यमदृष्टयौवनं तव चाम्भोरुहलोचने वयः ।।३३।।

(विलोक्य सहर्षम्) कथं ममैकया कलया प्राचीललाटे प्राचीनपद्मरागललाटिकाश्रियमुद्वहन् उदयगिरिशिखरमारुरुक्षुः पद्मिनीबन्धुः ।

गालवः —भगवन् पश्य पश्य–

सासन्तरा कथमियं जगती विभाती-
त्युद्ग्रीवमन्तरितविग्रह एव भानुः ।
ईषद्वलत्किरणकैतवक्लृप्तहासः,
पश्यन्निव प्रणयतः शनकैरुदेति ।।३४।।

श्रीदामा — प्रवृन्दारुवृन्दारकालीकदेशस्खलन्मञ्जुमन्दारवृन्दाञ्चिताङ्घ्रिः ।
नमामि त्रिलोकीकृतेः साक्षिभूतं, तमिस्रातमस्तस्करं भास्करं तम् ।३५।

(इति भानुमभिवन्द्य । कृष्णं प्रति)

यं स्वर्णनिर्मितविटङ्कधियाऽवलम्ब्य,
केलीशुका निपतिता अपि संश्रयन्ते ।
शर्माणि वो दिशतु घर्मघृणेः स कोऽपि,
जालान्तरालपतितः प्रथमो मयूखः ।।३६।।

(पुनर्विलोक्य) कथं प्रव्यक्तसकलमण्डलो भगवान् मरीचिमाली । वयस्य, पश्य पश्य–

पिष्टातकैरिव विलिप्य दिशो विभागं,
हैमं निदाघमहसं घटमादधाना ।
उद्यत्कराङ्कुरनवीनदलावृताङ्गं,

प्राची तमोविलयशान्तिमिवाकरोति ॥३७॥

गालवः —भगवन्, पश्य पश्य–

> **मत्सङ्गादुदयमवाप्य पश्चिमाशां,**
> **यातोऽसीत्यहह रुषेव लोहितश्रीः ।**
> **अङ्गारं सपदि नु खादिरं खरांशु,**
> **रंभुक्षी क्षिपति हरिस्तुषारभानौ ॥३८॥**

विदूषकः —एण्हि गुरुसिस्साणं मनीसा जालीअपोल्लिअच्चेअ प्पसरदि ण उण साहिच्चणिरुत्तवण्णणम्मि । (इदानीं गुरुशिष्ययोर्मनीषा सरन्ध्रायां पोलिकायामेव प्रसरति न पुनः साहित्यनिरूपितवर्णने ।)

कृष्णः —कथं साहित्ये निरुच्यते ?

विदूषकः —(सगर्वम्) ण कहिस्सं । सव्वे वि तुह्म मह विज्जं गेण्हिदुं पउत्ता । (सस्मरणमिव) अहवा मए अच्चुत्तमा विज्जा बह्मणीए सआसे ठाविदा थोआ मह सआसे चिट्ठदि । तं चेअ पभासइस्सं । सुणोदु पिअवअस्सो – "पुव्वदिसादिअमंडलं बहुलखंडअं । गअणखप्परे कुणई णिब्भरे ॥ [क] (३९)

[न कथयिष्ये । सर्वेऽपि यूयं मम विद्यां गृहीतु प्रवृत्ताः । (संस्मरणमिव) अथवा मया अत्युत्तमा विद्या ब्राह्मण्याः सकाशे स्थापिता स्तोका मम सकाशे तिष्ठति । तामेव प्रकाशयिष्ये । शृणोतु प्रियवयस्यः —
पूर्वदिशादिवसमण्डलं बहुलखण्डलम् । गगनखर्पं रंकरोति निर्भरम् ॥३९॥]
(सर्वे हसन्ति)

श्रीदामा —कथं हस्तयुगमारुढो भगवान् गभस्तिमाली । वयस्य, तदनुजानीहि गृहपतिशुश्रूषायै ।

विदूषकः —णं घरिणीए भण । [ननु गृहिण्या भण ।]

कृष्णः —सखे, ह्यः एवागतो भवान् किल । गृहपतिं शुश्रूर्षयितुं नः प्रजावत्यपि समर्था ।

विदूषकः —परघरपइं वि। (परगृहपतिमपि)

श्रीदामा —(सप्रश्रयम्) तथाप्यरण्यौकसो हि वयम् ।(सस्नेहम्) सखे, चिराय भव-

दर्शनविधुरयोरनयोर्नयनयोरुत्कलिकयोपढौकितो भवदन्तिकम् । तत् सम्पन्नोऽनयोर्मनोरथः । परन्तु मुषितबाह्येन्द्रियप्रसरं न यावन्मनसा गृह्यसे तावत् कुतो मे निर्वृतिः । तदिच्छाम्यहं भवद्दर्शनावलोकनसुधासारवर्षस्यावग्रहायितुम् ।

कृष्णः —(आत्मगतम्) सम्पादितचरोऽस्य मनसो भावः । तद् गच्छतु । (प्रकाशं सस्मितम्) वयस्य, यद्यस्मत्प्रजावतीवदनदर्शनलालसा तरलयति वयस्यं तर्हि नोपरोद्धुमुत्सहे । (सविमर्शम्) अहह ! स्निग्धजनविश्लेषो जनं वक्तव्यमूढं करोति । तथाहि– गच्छेति पारुष्यं, मा गच्छेति प्रभुताभिनयो:, यथेच्छमनुतिष्ठेति औदासीन्यम्, आगत्य साधु वयं सम्भाविता इत्युपचारः न किञ्चिदस्माभिरुपकृतमिति स्वशाठ्यपौनरुक्त्यं, पुनरपि दर्शनदानेन सम्भाव्योऽयं जन इति वृथादरः, तन्न जाने प्रवत्स्यमाने त्वयि युक्तं वक्तुम् ।

श्रीदामा —

किमधिकं नु सखे मम मानसे,
विहरसे कृतहंसपदस्थितिः ।
परमुदञ्चतु मा हृदयान्तरे,
तव कदापि हरे मम विस्मृतिः ॥४०॥

कृष्णः —(सविनयं सप्रणयस्मितञ्च) तदात्मानं विस्मरिष्यामि ।

श्रीदामा —तदनुजानातु मां प्रियवयस्यः । कस्तृप्यत्यमृतानां तथाप्यतिवर्तते कापि वेला ।
(कृष्णः पादयोर्निपत्य श्रीदाम्ना निरुध्यमानोऽपि कतिपयपदान्यनुव्रज्य सखेदं सपरिवारो निष्क्रान्तः ।)

श्रीदामा —(गालवेन सह परिक्रम्य सहर्षमात्मगतम्) वित्तार्थनाप्रेरितमनसोऽपि मे यद्वयस्यो नापूपुरन्मनोरथं तद्युक्तमेव रचितवान् ।

यतः —

पीतया मदिरया प्रमाद्यति,
स्पष्टयैव धनसम्पदा जनः ।
तच्छमस्य परिपन्थिनीमिमां,
सङ्गृहीतुमपि कः समुत्सहेत् ॥४१॥

गालवः —भगवन् चिरेण मिलितस्य भवद्विधस्यापि वयस्यस्य नोपाचरदपचितिमनुरूपां कृष्णदेवः ।

श्रीदामा —(स्वगतम्) वटुः खल्वयम् । तदेनं प्रत्येवम् । (प्रकाशम्) वत्स, क्व पुनरै-

श्वर्यमैरेयमत्तामजर्यपर्यवसानं प्रेम। सत्यपि तस्मिन् क्वचिद् बद्धमुष्टिता प्रतिबद्धा न जरीजृम्भत्युदारता। मम च–

बहुलाव्ययसमुदायादासादयतः कमप्यर्थम्।
तुहिनपदतुल्यरूपात् कृपणादपि वेपते कायः ॥४२॥

गालवः —यद्येवं तर्हि कथमार्यया प्रेरितो भवान् 'गमय वयस्यं सभाजयितुमिति'।

श्रीदामा —(सविमर्शविषादम्) वत्स, लाघवकारणं हि स्त्रियः। तथा ह्येताः
"हरन्ति सहसा पुंसां प्रज्ञया सह गौरवम्।"

गालवः —भगवन् आर्यया गृहोपकरणोपयोगाय भवानप्रेरि तादृशवयस्यमनुसर्तुम्। तत्रैवंविधे वृत्ते वृत्ते कथमपराधिनीं मन्वान उपालभते तपस्विनीम्।

श्रीदामा — वत्स किमात्थ –

कृत्वा लघूनिमान् भूयः तृणवत् प्रक्षिपन्ति च ॥४३॥
तदनया नतादपेतया दशामिमां प्रापितोऽस्मि।

अथवा-

प्रेरयति दिष्टमिष्टानिष्टे कष्टं यथा यथा रभसात्।
प्रसरति मानसवृत्तिस्तथा तथा जन्मिनामवशम् ॥४४॥

(किञ्चिद् गत्वा। पुरोऽवलोक्य) कथमुटजस्थाने पुटभेदनमिव दृश्यते?

(सचिन्तम्) हन्त! वराकी ब्राह्मणी किमवस्था भवेत्?

गालवः —भगवन् किमैन्द्रजालिकमेतद् उत कस्यापि मायाऽथवाऽस्मन्नयनापाटवमथ मतिभ्रमः उताहो तात्त्विकमिति किमाचार्येण निरधारि?

श्रीदामा —(विमृश्य) वत्स, प्रायः केनापि श्रीमदमन्थरेण रूपशालिनीं ब्राह्मणीमपहृत्य स्वावासपत्तनमकारि पर्णशालास्थानस्यायुक्तम्।

गालवः —कदाचित् पर्णशालां हित्वा रचितं भवेत् पुटम्। तद्यावत् गवेषयावः।

श्रीदामा —तथा कुर्वः। (इति परिक्रामतः) वत्स, इतो दीर्घविशिखामारूढौ स्वः। एष शृङ्गाटकगामी पन्थाः। इतो राजभवनम्। पुरश्च दृश्यते चन्द्रशाला। क्वाऽत्र पर्णशाला? (विभाव्य) न प्रसरति मनीषा मनीषाजुषामपि

विपरीते वेधसि कार्याकार्ये। अस्माकञ्च दैवमञ्चति प्रातिकूल्यं सर्वथा। अपरथा क्वास्मिन् जने दौर्गत्यगतिः, क्व प्रवृत्तिः कृष्णदर्शनाय, क्व पर्णशालाविच्छेदः, क्व प्रियया वियोगः प्रसरेत्। (सशोकम्) हा प्रिये, हा माग्निहोत्रसहचारिणि, हा मन्निमित्तमनुभूताकिञ्चनत्वदुःखे ? हा सतीव्रतैक - तीव्र-तापसहे, क्व गतासि ? कां दशां प्रपन्नासि ? केन नीतासि ? कथं वा तत्र रमसे मां विना ? देहि मे प्रतिवचनम्।

गालवः —भगवन्, किमकाण्ड एव तादृशधैर्यधारिधुरीणेन तत्र भवता भवता वैक्लव्यमालम्ब्यते ?

श्रीदामा —वत्स, द्वितीयाश्रमपरिपन्थी नायं धैर्यविषयः। (सहर्षम्) अथवा अनुकूलमेव दैवेनाचरितम्। यतः प्रव्रज्यावस्थामनुवृत्त्यातिशर्मणा वाहयामि शेषमायुषः।

(प्रविश्यापटीक्षेपेण कञ्चुकी)

कञ्चुकी –(प्रणम्य) आर्य, सविनयप्रणाममार्यागमनाय स्पृहयति आर्या।

श्रीदामा –को भवान् ?

कञ्चुकी –आर्यपादमूलोपजीवी प्रेष्यजनः।

श्रीदामा –कथमस्मत्पादमूलोपजीवी। आश्चर्यकरो वचःक्रमः।

गालवः –भगवन्, किमेतत् ?

श्रीदामा –वत्स, एवमेव प्रतार्य पौरपुरन्ध्रीभिरपह्रियन्ते विपश्चितः।

गालवः –अयि भोः, केन प्रेषितो भवान् ?

कञ्चुकी –अस्मत्स्वामिन्या आर्यया।

श्रीदामा –वत्स, किमेनं पृच्छसि। एष तावदवरोधनरोधनो वर्षधरः। तादृशीनां कुलटानां प्रेरणया वञ्चयति पुरुषान्।

कञ्चुकी –(स्वगतम्) एष तावद् दरिद्रः कुरूपः आर्यया किमित्यानयेति भण्यते।

कथमयमनुनेयः। (प्रकाशम्) स्वामिन् आर्यया, चिराय प्रतीक्षते। तदनुगृह्णातु भवान् स्वदर्शनदानेन।

श्रीदामा –(सक्रोधम्) अपसर्प तृतीयप्रकृतिपांसनपरे ते पुमांसो येषां चेतांसि त्वा-

दृशचेटद्वारा पांसुला वशयन्ति ।

गालवः —भगवन्, यावत् प्रवृत्तिमुपलप्स्ये । (तं प्रति) अयि भोः, किमभिधा तवार्या ?

कञ्चुकी -वसुमत्यभिधाना तत्रभवती ।

गालवः -(अपवार्य) कथमस्मदार्याभिधासंवादिन्याह्वा ?

श्रीदामा -एकाभिधा कति न सन्ति ?

कञ्चुकी -किमेवं विचारणयैवातिपात्यते कालः । प्रत्यासीदत्यार्या भवद्दर्शनतलितं नयनद्वन्द्वम् ।

श्रीदामा —(सामर्षम्) धिङ् मूर्ख, के वयम्, का तवार्या, किमर्थमवसीदनं नेत्रयोस्तदपसर शर्मणा ।

गालवः —(अपवार्य) भगवन्, क्षणं क्षम्यताम् । संवादिन्येव कथा दृश्यते । यावत् तत्त्वमुपलप्स्ये । (तं प्रति) भोः, पुरा एकमत्रोटजमासीत् । तत्स्थाने कथमयं पुरस्योद्गमः, किन्नामकमदः, कः प्रशास्ता, तस्य च तवार्यया कीदृशः सम्बन्धः ?

कञ्चुकी —प्रसिद्धमेवैतत् । पूर्वमत्र श्रीदाम्नो द्विजस्याश्रमपदमासीत् । तस्मिंश्च दौर्गत्याभिभूते धनप्रत्याशया द्वारकेशं द्रष्टुं गते तेन च सर्वान्तिर्यामितया भावज्ञेन तत्कालमुपहूय विश्वकर्माणं तद्द्वारेण कारितम् उटजस्थाने तन्नाम्ना नगरम् ।

गालवः —किमिदं श्रीदामपुरम् ?

कञ्चुकी —अथ किम् ।

श्रीदामा —आश्चर्यमिव ।

कञ्चुकी —तद्वल्लभया आर्यया वसुमत्या तदागमनमुत्प्रेक्षमाणया कतिपयरात्रमीक्ष्यतेऽत्र व्यापारः । तयैव युवां द्वारवतीगामिपन्थानमतीत्येदं नगरमाश्रयन्तौ विलोक्य मन्मुखेन समाकारितौ ।

गालवः —भगवन्, त्वद्गामिन्येव कथाप्रवृत्तिः ।

श्रीदामा —धिङ् मूर्ख, बाढम् ईदृक्प्रतारकवचोनिचयैः श्रीदामा धर्मात् प्रच्युतो भविष्यतीति जानीषे ।

गालवः —नहि नहि भगवन्, ननु ब्रवीमि विप्रकृष्टत एव दृष्टायामपि तस्यां न प्रच्यवते धर्म इति ।

कञ्चुकी —युक्तमाह बटुः ।

श्रीदामा —(सदन्तपेषं परिक्रम्य) सिद्ध्यतु ते मनोरथः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

चतुर्थोऽङ्कः ।

  

अथ पञ्चमोऽङ्कः

(नेपथ्ये)

भो भो चतुपंचतीयो ककणवाणेण शिरिताम-णकरं तट्ठुं पज्जेति । ता पितूशअं शाराअणं पंतिअं गणनजंटं शज्जफामा तेपिं अहग्गारेह । एप्पं फणंदि तुह्मे । चं अण्णाणं पि गेरिशी आणद्दीत्ति दा हगेमि । शुणाह-गरिणो पाचिणो बट्टिणो गूपरिणो फूमिमक्केण पच्चंदु छट्टि यचा शद्दाइ शच्चाइं गुणंतु । चाप णिवेतेमि तारआणाहश्शत्ति । [भोः भोः यदुवंशदीपो गगनयानेन श्रीदामनगरं द्रष्टुं पर्येति । तद् विदूषकं सारायणं बन्दिनं कनकचण्डं सत्यभामा देवी आकारयति । इत्थं भणन्ति युष्मान् -ः यदन्येषामपि कीदृशी आज्ञेति तद् वदामि । शृण्वन्तु - करिणो वाजिनो पत्तिनो कूवरिणो भूमिमार्गेण व्रजन्तु झटिति यथा शब्दानि सत्यानि कुर्वन्तु । यावन्निवेदयामि द्वारकानाथस्येति ।,]

(ततः प्रविशति विदूषकः वन्दिसत्यासहितः आकाशयानेन कृष्णश्च)

कृष्णः —वयस्य, चिरेण मिलितः श्रीदामा निशामेकामुषितस्तथैव गत इति सोत्कण्ठमिव मे मानसम् ।

विदूषकः—किं तहिं चित्तं जहिं रमेइ पुरुसो रमेइ तहिं ति विसेसदा सिरिसोहाए सरिसो तारिसो वअस्सो। [कि तत्र चित्तं यत्र रमति पुरुषो रमेति तस्मिन् इति विशेषतः श्रीशोभया सहितस्तादृशो वयस्यः।]

कृष्णः—(सस्मितम्) सर्वत्र वक्रोक्तिप्रवणता कुटिलमतेः।

विदूषकः—(विमानवेगं निरूप्य) वअस्स, मेहमंडलं फालिअ पइट्ठे ण इमिणा विमाणेण विज्जूसिरिणाहिणा पंफालिआ चादअमंडली। [वयस्य, मेघमण्डलमुत्फाल्य प्रविष्टेनानेन विमानेन विद्युच्छिरोणाहिना प्रक्षालिता चातकमण्डली।]

कृष्णः—(विलोक्य) वयस्य, पश्य विमानम्।

विभाति पार्श्वे चरतां घनानां,
विर्दभिन्नानामचिरप्रभाभिः।
मध्ये द्रुतस्वर्णविदूरक्लृप्त-

विलम्बमानं प्रतिसीरमेतत् ॥१॥

अपरमिह कौतुकम्—

विमानपालीषु विघट्टनेन,
परिच्युतान् वारिकणान् घनेभ्यः।
पातुं प्रवृत्तान्यपि चातकानां,
कुलानि वेगाद् विफलीभवन्ति ॥२॥

(किञ्चिदुच्चैः विमानगतिं निरूप्य) वयस्य, पश्य पश्य—

आकृष्यते तु केनापि सपर्वतवनावनी।
अधस्ताद् सुरवर्त्माऽपि शनकैः सन्निधाप्यते ॥३॥

विदूषकः—ही ही भोः किं एदं ईसाणदिसाभागम्मि पव्वइगुरुणो मालइ कुसुमसेहरो व्व दीसइ। (सहर्षम्) आं मुणिदं मुणिदं हिमगिरिट्ठिदाणं रक्खसाणं भक्खणाअ कूरो रइदो। [ही ही भोः किमिदमीशानदिशाभागे पार्वतीगुरोर्मालतीकुसुमशेखर इव दृश्यते।
(सहर्षम्) आं मनितं मनितं हिमगिरिस्थितानां रक्षसां भक्षणाय भक्तो रचितः।]

कृष्णः—(सस्मितम्) धिङ् मूर्ख, कैलासोऽयम्।

विदूषकः —किं कैलासो जहिं संकरो वसइ ? [किं कैलासः यत्र शङ्करो वसति ?]

कृष्णः —अथ किम् । यत्र च—

प्रेम्णार्धसङ्घटितयोः शिवयोः पुरस्तात्,
स्तन्यार्थिनौ द्विरदनाननकेकिकेतुः ।
एकस्तनाश्रयतयाऽहमहं पुरस्ता-
दित्यङ्कुताञ्चितशिवं मृधमारभेते ।।४।।

सत्यभामा —तारिसं पेम्मं धण्णाओ वणिआओ अणुहोंति । अम्हेहिं— [तादृशं प्रेम धन्याः वनिता अनुभवन्ति । अस्माभिः-] (इत्यर्धोक्तौ लज्जया मुखं व्यावर्तयति ।)

कृष्णः —(सस्पृहमवलोक्य सस्नेहमालिङ्ग्य च) अयि,

एकीकृते वपुषि देवि कथं भवेयुः,
कोपप्रसादविभवानुभवा जनानाम् ।
यावन्न धर्ममहसो महसि प्रचारः,
छायाभिनन्दनविधिः प्रसरेत् क्व तावत् ।।५।।

माने च प्रेमाप्यतिभूमिं गच्छति । स्मरसि पारिजातनिमित्तं मानवत्यां भवत्यां तरलिकयाऽस्मदवस्था निवेदिता ।

अदशिचत्रं चित्रं श्रुतिविषयवैषम्यजनकं,
यदाशाकाशादौ सुमुखि तव रूपं कलयतः ।
असत्यामभ्याशे त्वयि च सतताभ्यासवशतो,
विनाधारं रूपग्रहणपटु तस्येक्षणमभूत् ।।६।।

इति । तत्संयोगापेक्षयापि विप्रलम्भे प्रेमातिशयो भवतीति मन्महे ।

विदूषकः —णं ण जणाइ प्पिअवअस्सो अद्धघटणं कादुं तेणा एव्वं भणादि । मारिसो उण पादघडणम्मि वि समत्थो तं विण्णाणं सोहग्गं बह्मणी च्चेअ पुच्छीअदु [ननु न जानाति प्रियवयस्योऽर्धघटनां कर्तुं तेनैवं भणसि । मादृशः पुनः पादघटनेऽपि समर्थः तद्विज्ञानं समग्रं ब्राह्मणीत एव पृच्छतु ।] (सर्वे हसन्ति)

कृष्णः —(सोद्ग्रदीवं विलोक्य) वयस्य, किमिदं प्रभापटलतिरोहितरोदसी-कन्दरोदरं

पुरःकल्पितपुरन्दरधनुर्विभवभरं समुत्सारिततिमिरं दृश्यते ?

विदूषकः—(विलोक्य विमृश्य च) णं एदं अम्हाणं पुरदो केणा वि गंधव्वणअरं वेसाणरकप्पं । [नन्विदमस्माकं पुरतः केनापि गन्धर्वनगरं विरचितं वैश्वानरकल्पम् ।]

कनकचण्डः—गन्धरवंनगरदर्शनमरिष्टमिति वदन्ति सूरयः ।

विदूषकः—ता उवट्ठिदो तुह मिच्चू । [तदुपस्थितस्तत्र मृत्युः]

कनकचण्डः—प्रथमं गन्धर्वनगरोपस्थितिरार्यस्यैव ।(कृष्णं प्रति) देव, देवादेशेन विश्वकर्मणा रचितं श्रीदाम्नः पुरमेतत् ।

कृष्णः—(सहर्षम्) किं श्रीदामपुरमेतत् ।

कनकचण्डः—अथ किम् ।

विदूषकः—ता सोहग्गम्मि बुड्दो णिवुडओ बुढ्ढओ । [तत्सौभाग्ये त्रुडितः क्षुल्लको वृद्धः]

कृष्णः—(विलोक्य) अहह ! रामणीयकमस्य ।

यत्सौधसञ्चारिकपोतचञ्चू -
सञ्चूर्णितानां बत तारणाङ्कः ।
का नाम नासीददसीयलोक -
वितीर्णबालेयकतण्डुलश्रीः ॥ ७ ॥

कनकचण्डः—इतः पश्यतु देवः । पुरस्य विविधमणिमयसौधमरीचिनिचयकिर्मीरितरोदसीतलमध्यवर्तितयान्तराल इव शृङ्खलदण्डैर्धरितस्योपरिचरत्सुरनिकर-भारपतनभयेनेव स्वभवनशिखरैर्नभ उत्तम्भयतः । क्वचित् स्फटिकघटिकुतट्टिम'''मिलितेन्द्रनीलप्रभाभावित सितासितशोभस्य, क्वचिदन्तराजटितपद्मरागहीरभूमिषु गाङ्गसलिलप्ररूढ़कोकनदप्रभा - पतितमधुपकदम्वजनितलोचनलोभस्य रामणीयकम् । यत्र च दिनकरमण्डलैरिव प्रांशुभिः, ऋषिकुलैरिव प्रवर्तितानेकशाखैः, स्मृतिवाक्यैरिव समूलैः, नृपैरिव बहुपत्रावृतैः, ऋतुभिरिव सफलैः, पार्पाद्धिकैरिव धृतप्रसूनैः, मीमांसान्यायैरिव सपिकाधिकरणैः, मुनिभिरिव सशुकैः, द्यूतरतैरिव लक्षितसारीप्रचारैः, शौण्डिकापणैरिव मधुपकुलसङ्कुलैः, पादपैरुपचितेन । अकलितस्थाणुनाप्यन्तर्धृतशिवेन, उज्झितापर्णेनापि सर्वमङ्गलालयेन, स्त्रीकदम्बेनेव नवर्तुदर्शनामोदितविचित्रवयसा, धीरचरन्मधु-

रुदारस्पर्शजनितमनोजनिनोद्यानेन परिवृते। सौरलोकचुम्बिभिरपि धृतचन्द्रशालैः, जातसात्त्विकभावैरिव धृतस्तम्बैः, खम्पतिबलैरिव समत्तवारणैः, राशिभिरिव सतुलैः, वनैरिव विविधशालैः, सप्ततन्तुभिरिव कृतापूर्वद्वारैः, यतिभिरिव भिन्नदिनमणिमण्डलैः, गिरिशैरिव चन्द्रशेखरैः, क्वचित् पद्मरागभित्तिप्रभाभिर्नित्यदर्शितारुणोदयैः, क्वचिद् वज्रकुट्टिममयूखैर्दिवानिशं कौमुदीविलासं तन्वद्भिः, क्वचित् सान्द्रेन्द्रनीलनिकायकिरणांकुरम्बैर्ध्वान्तधोरणीमाविष्कुर्वद्भिः, क्वचित् प्रतिरजनि रजनिकरकरनिकर-प्रतिकर-प्रसरदम्बुतुन्दिलेन्दूपलगलदमलजलप्रणालिकामिलितजलदपटलप्रकटितप्रावृडाडम्बरैः भवनैरुपचिते, हरिबाहुलताभिरिव सचक्राभिः, सतीभिरिव सत्यवतीभिः, प्रभुशक्तिभिरिवावर्जितकुवलयाभिः, सिंहलद्वीपभूमिरिव पद्मिनीललिताभिः, बालाहृदयवृत्तिभिरिव गभीराशयाभिः, प्रसादकटाक्षच्छटाभिरिव निर्मलाभिः, क्वचित् स्नानागतनागरीकुचकलशकालेयककस्तूरिकाकलुषिततया कालिन्दीसरस्वतीसम्भेदमिव प्रकटयन्तीभिः, क्वचिद् धौताङ्गरागीकृतश्रीखण्डद्रवदिग्धपयःपूरपरिभावनया प्रकाशयन्तीभिरिव भागीरथीजनकावचयनिचयनिधानतामात्मनः, क्वचिन्नियमिजनानुष्ठीयमानधर्मकर्ममनोहराभिः, उत्पत्तिस्थलीभिरिवामृतस्य, जनयत्रीभिरिव मधुररसस्य, आस्थानीभिरिव शिशिरतायाः, प्रसवित्रीभिरिव पुण्यस्य, निखिलकरणनिर्वापिकाभिर्वापिकाभिर्भरिते, विडौजसाप्यगोत्रभिदा, सुरूपेणापि धनदेन, महेश्वरेणाप्यनुग्रेण, जगत्प्राणेनाप्यप्रभञ्जनेन, शशिनैव जैवातृकेणाप्यकलङ्किना, वह्निनेव पावकेनाप्यकृष्णवर्त्मना, विष्णुनेवाच्युतेनाप्यजनार्दनेन, त्यक्तेन पापैः, अवधीरितेन जडतया, अपरिचितेन कालुष्यैः, असन्निधापितेन दौर्जन्येन, अनादृतेन दुराचारेण, अङ्गीकृतेन श्रोत्रियतया, अभ्यर्हितेन दातृतया, आश्रितेन ज्ञातृतया, लम्भितेन विनयेन, कृतरञ्जनेन जनेनाञ्चिते। यत्र च शूलसम्बन्धो योगेषु, गदाभियोगः पीताम्बरे, कपालित्वं शङ्करे, बलहानिरसुरेषु, क्षयप्रचारो भवनेषु, हस्तेन कन्यावयवाभिमर्शनं ज्योतिःशास्त्रे, यतिभङ्गः छन्दसि, रीतिवृत्त्युच्छेदः कुकवित्वे, अन्यथाख्यातिरक्षपाददर्शने, दण्डपातो ढक्कासु, हृदयशून्यत्वं काहलेषु, नासिक्यभागपरिच्छेदो देशविशेषे, करप्रच्यवो दिनान्तपातुकदिनमणिमण्डले दृश्यते न प्रजासु। यत्र च लक्ष्यलक्षणपदकृत्यकुशलाः पुरोगतदोषमुत्क्षिपन्तोऽन्तर्मन्दिरं विपश्चितोऽन्तर्मन्दुरञ्च वाजिनः, विप्रतिपत्तिभञ्जनाः सर्वत्र परिणतिमापादयन्तो बन्धविच्छेदे मुक्तिमाकलयन्तोऽधिमठं मस्करिणो बहिश्च वारणाः। भुजङ्गावरुद्धहस्ताः कण्टकिन्योऽतिरभसपातिन्यो मधुपान् स्वाभ्यर्णं भ्रामयन्त्यो रजोरञ्जिता अन्तःकर्णाटचेट्योबहिः केतकवन्यश्च। अपरं—यत्र न केवलं पञ्जरान्तस्थाः शुकसारि-

कादयो रामरामेति पठन्ति प्रथमाक्षरशून्या अपि, न केवलं दान्तस्थिति-हारिणः पद्मकापविद्धाः आरक्षकोल्लासिनः पुष्करामृष्टशिरसो हरन्ति कुञ्जरा गतान्तवर्णा अपि। तदियमतिशेते शेषराजकामशेषराजकाह्लादिनीं पातालपुरीं तथा मरुत्वता पालिताम् अमरावतीम्।

कृष्णः—(सहर्षम्) अहह ! त्वरिततरमेव निरमायि विचित्रकर्मणा विश्वकर्मणा स्वनिर्मितिसर्वस्वमियं पूः। यस्यां च— क्वचिदाहिताग्नि-वितताग्निबहुलधूमसौरभलोभभ्रमदमरविमानसम्भृते व्योम्नि सञ्चरद्भुवनमणिमरीचिसंवलनया द्यावापृथिव्योर्व्यत्ययं के न मन्वते जनाः। अभूमिरियमचिन्त्यतया मनसोऽनास्पदं दुर्निरीक्ष्यतया चक्षुषोरनाघ्रेया, गन्धप्राचुर्यादिनास्वाद्या, रसाधिक्यादश्रव्या बहलकलकलेनास्पृश्याऽनेकविधस्पर्शेन वाचारम्भणीयाऽपि वाचामगोचरा, अदृश्यापि स्वप्रकाशा कं न नयति वेदान्तभङ्गीव निर्वृतिम्।

कनकचण्डः—इतः पश्यतु देवो हिन्दोलनलीलाकलनां ललनायाः।

कृष्णः—(विलोक्य) अहह !

धम्मिल्लोद्वान्तमल्लीपरिमलपटलोद्भूतपुष्पन्धयाली–।
गुञ्जासञ्जाततानप्रसरवितरणाभिन्नगानप्रपञ्चः।
भूमिन्यस्तैकपादव्यतिकरणरणन्मञ्जुमञ्जीरमस्याः,।
कस्यान्तः पञ्चबाणप्रणयि वितनुते नैव दोलाविलासः॥८॥

(सवितर्कम्)

पादद्वन्द्वपराहताहवदिवः पङ्केरुहाक्षी मुहुः,
कारङ्कारममन्ददोलनरसव्यासङ्गबद्धादराः।
भूयः प्रेक्षणकौतुकोत्कररसादंसावतंसायित-
व्यावलगन्मणिकुण्डलद्युतिरियं धत्ते किमुद्ग्रीविकाम्॥९॥

कनकचण्डः—इतोऽपि वणिक्पथे पुञ्जितानां मृगमदघनसारकेशराणां परिमलपटलमिलदलिबलहनीलपटीप्रावृते सञ्चरन्मरुतानके कुरङ्गतां रम्भाप्रक्रीडतां काश्मीरक्षेत्रताञ्च लम्भिताः। इतोऽपि न कया वागुरायितं वारविलासिन्या युवनिवहवातायुवर्गस्य। इतोऽपि परस्परासक्तयोः—

यूनोर्जयति सरागं कौतुकवागञ्चितात्मसम्भवयोः।

निस्पर्शशब्दशाली करतलतालीप्रदानसंरम्भः ॥१०॥

इहापि- रत्नवीथीमधिश्रिता पुरःस्थितमणिकिरणैश्चित्रितवसना स्वस्वप्रावरणदर्शनजनिताद्भुताः मिथो विप्रतिपद्यन्ते। दृष्टसज्जनमज्जना नदीरियमनुकुरुते पुरी। तथापि- नवरसभृताप्यनाविलाशया जनतयोपमीयते।

विदूषकः —साहु रे कणअचंड साहु । विस्सकम्मेण णिम्मिदं तुए अ वखाणिदं एदं णअरं ता तुम्हे दुवे वि सोत्थिवाअणेण सिरिदामा सम्माणइस्सदि। वअस्स, एदं सिरिदामभवणं त्ति तक्कीअदि सूपण्णधिट्ठिदेण धजेण । [साधु रे कनकचण्ड साधु। विश्वकर्मणा निर्मितं त्वया व्याख्यातमिदं नगरं, तद् युवयोः द्वयोरपि स्वस्तिवाचनेन श्रीदामा सम्मानयिष्यति । वयस्य, एतद् श्रीदामभवनमिति तर्क्यते सुपर्णाधिष्ठितेन ध्वजेन ।]

कृष्णः —(स्वगतम्) मच्चिल्लधार्यममाप्तभक्तः। (प्रकाशम्) वयस्य, यथोपलक्षितं भवता तत्तथैव। तदवतरामस्तावन्नभोयानान्मेघप्रच्छन्दप्रासादम्। (सर्वेऽवतरणं नाटयन्ति)

सत्यभामा —अम्महे, मसिणमणिकुट्टिनिम्मि चलंतीए खलंति मे चलना । [अहो ! मसृणमणिकुट्टिमे चलन्त्याः स्खलतः मम चरणौ]

कृष्णः — **मरालीमन्दगमने स्खलेतां ते पदे कथम् ।**
जनेऽस्मिन् सततानुज्ञाविधायिनि समीपगे ॥११ ॥

(इति तदीयं हस्तमालम्ब्य स्पर्शसुखमभिनीय च)

त्वत्करजन्मा स्तम्भः कम्पश्च मच्छरीरतले ।
एकावस्थितिहेतुकमातन्वाते महाजन्यम् ॥ १२ ॥

(सत्यभामा सलज्जमधो वीक्षते)

विदूषकः —(पुरोऽवलोक्य) वअस्स, पेख्ख पेख्ख। दोहिंसु भाएसु दुव्वण्ण-कणअरअणलट्ठिमूलवट्ठंभिदमहिअलं विअ भूसणुक्करभासुरंगं भासुरंगं व्व मज्झआरम्मि पाभासअंतं सअंतसवलिअलं कचंगिहिं उल्लसिदं सिहिणसिहरुव्वेलिदहारलदारंजिदं सणिज्जवणसिरिअं व्व वित्थारअंतं वाणिआकदंबअं दीसइ । पुरदो वि मरअदमणिकुट्टिमुच्छलिद-जलजंत-णिक्कंत-सीअरासार-

दंसिद-चाउस्समहूसम्मि विविह-रअण केसरकुसुमुक्करपकडिदसुरहिरिम्मि देवंगणासरिससहअरी-सहस्स-कर-अल-कालिद-विविहोवहारभाअणम्मि पोम्मराअमंडअम्मि मज्झत्थल - विलंबिदकणअ - सिखलावलंबिअं छम्मासमोतारुलिल्लपच्छद - पडच्छादिद - विविह-गुच्छइसंथणपेरंत-रअणपज्जंको भअ पाससंठिद मोत्तिओवधाणसंठविदपुट्ठो विविहभूसणछविछुरिददाए दुरालोओ उव्वसीरूवं धिक्कारणीए रमणीए सह आलवंतो मुक्कतेजोरासिपुंजिदो णं तेल्लोकपहावो पुरिसो दीसइ ।

[वयस्य, पश्य । द्वयोर्भागयो द्विवर्णकर्णाभरणरत्नलक्ष्मीमूलावष्टम्भितमहीतलमिव भूषणोत्करभासुराङ्गं भासुराङ्गमिव मध्यागारे प्रभासवन्तं सोत्तंसवलितकचाङ्गैः समुल्लसितशीर्षण्यशिखरोद्वलितहारलतारञ्जितं दर्शनीयश्रियमिव विस्तारयन्तं वनिताकदम्बं दृश्यते । पुरतोऽपि मरकतमणिकुट्टिमोच्छलितजलयन्त्रनिष्क्रमत्सीत्कारासारदर्शितिप्रावृण्महोत्सवे विविधरत्नकेसरकुसुमोत्करप्रकटितसुरभिते देवाङ्गनासदृशसहचरीसहस्रकरतलकलितविविधोपचारभाजने पद्मरागमण्डपे मध्यस्थलविलम्बिकनकशृङ्खलावलम्बितषण्मासकमुक्ताफलमत्प्रच्छदपटाच्छादितविविधगुच्छच्छविसंच्छन्नपर्यन्तरत्न--पर्यङ्कोभयपार्श्वमौक्तिकोपधानसंस्थापितपृष्ठः विविधभूषणच्छविच्छुरिततया दुरालोकः उर्वशीरूपं धिक्कारयन्त्या रमण्या सहालपन् मुक्ततेजोराशिपुञ्जितो ननु त्रैलोक्यप्रभावः पुरुषो दृश्यते ।

कृष्णः—(निपुणं विलोक्य) वयस्य, ननु श्रीदामाऽयम् ।

विदूषकः—अच्चरिअं अच्चरिअं । तस्स तरिसरूवस्स वि एरिसो पभाणिवेसो त्थि । अहवा णादं - [आश्चर्यमाश्चर्यम् । तस्य तादृशरूपस्याप्येतादृशः प्रभानिवेशोऽस्ति । अथवा ज्ञातम् (संस्कृतमाश्रित्य)

अनया हि श्रिया यो न स्वभावदीर्घः,
परसंयोगान्न यो गतो गुरुताम् ।
छन्दःशास्त्र इवास्मिन्नन्त्योऽपि,
लघुगुरुः क्रियते ॥ १३ ॥

कृष्णः—यथात्थ वयस्यः । तद्भवतु तावदुपसर्पामः । (इति सर्वे परिक्रामन्ति)
(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः श्रीदामा वसुमती पार्श्वस्थितसुवर्णपर्यङ्किकासीना नलिनी विभक्तश्च परिवारः ।)

वसुमती —अज्जउत्त, णलिणीए उवद्दिट्ठस्स गोरीवदस्स केरिसो माहप्पो जं मित्तघरं पत्थिदेसु वि तुम्हेसु उअकरज्जम्मि वि विसूरंतेसु तिणा अरीदो उद्दो-वआरो संदीसइज्जेव्व। गोरीए उण तुम्हा पच्छाहिच्चिअ एरिसा रइदा सिरीए संभारो। [आर्यपुत्र, नलिन्युपदिष्टस्य गौरीव्रतस्य कीदृशं माहात्म्यं यन्मित्रगृहप्रस्थितेष्वपि युष्मासु उपकार्येऽस्मिन् विस्मृतेषु तयाचरितः उचितः व्यवहारः सन्दृश्यत एव। गौर्या पुनः युष्मान् प्रस्थाप्य ईदृशः रचिताः श्रियः सम्भाराः]

नलिनी —(सगर्वम्) हला, कहं णु तत्तहोदी वण्णिज्जइ। जाए प्पसाएण तेल्लोक्कं सक्को रक्खइ, दासरहिणा वि तं च्चेअ आराहइअ समण्णातिही किदो दसमुहो। अण्णं वि तीए घसाएण च्चिअ दुवेवि लोआ करअलालोआ होंति। [सखि, कथं नु तत्रभवती वर्ण्यते। यस्याः प्रसादेन त्रैलोक्यं शक्रो रक्षति, दाशरथिनापि तामेवाराध्य शमनातिथिः कृतः दशमुखः। अन्यदपि तस्याः प्रसादेनैव द्वावपि लोकौ करतलालोकौ भवतः।]

(श्रीदामा अश्रुतमिव 'अनन्याश्चिन्तयन्तो मा'मित्यादि पठति)

वसुमती —णं भवामि गोरीवदस्स केरिसो माहप्पो त्ति। [ननु भणामि गौरीव्रतस्य कीदृशं माहात्म्यम् इति।]

श्रीदामा —अयि मूढे, यस्य वाङ्मात्रनियमितचराचरजगज्जननकन्दस्योपनिषन्मागधीविधीयमानयशःप्रशस्तेरादिपुरुषस्य पुरुषोत्तमस्य मायाया गौर्या माहात्म्यातिशयो वर्ण्यते। भवत्या न ज्ञायते तस्य माहात्म्यम्।

वसुमती —जइ एव्वं तुम्हे दारअं गदा वि कहं ण कण्हेण संभविहा। इह च्चेअ पउत्तो हालालो। [यद्येवं भवान् द्वारकां गतोऽपि कथं न कृष्णेन सम्भावितः, इहैव प्रवृत्तो हालाहलः।]

श्रीदामा —(सस्मितम्) सर्वत्र विपरीत एव ग्रहः स्त्रीपिशाचीनाम्। अयि मुग्धे,

गर्जति घनो न वर्षति वर्षति नो गर्जति प्रथितम्।
जल्पति न चोपकुरुते जन उपकुरुते न जल्पति कदापि॥ १४॥

तन्न जानासि तादृशानां महाशयानां चरितानुबन्धम्।

(सानन्दमात्मगतम्)

अगृह्णन् पिप्पलास्वादं भाति यो भासवत्यपि।

जगन्ति तं जनो जातु कथं जानातु पामरः ।।१५ ।।

(इति सरोमाञ्चं ध्यायंस्तिष्ठति)

नलिनी —सहि, सच्चं चेअ । जं वेदसत्थं सच्चवादीहिं पुरिसेहिं भणिदं [सखि,सत्यमेव । यद्वेदशास्त्रं सत्यवादिना पुरुषेण भणितम् ।] (इत्यक्ष्णा वारयति)

वसुमती —अह्मारिसाणं इत्थिआजणाणं तत्थं वि असच्चं च्चेअ । [अस्मादृशानां स्त्रीजनानां तथ्यमपि असत्यमेव ।] (इत्युभे सस्मितं मिथो विलोकयतः)

कृष्णः —(उपसृत्य सस्नेहं श्रीदामानमवलोक्य च)

स्वाङ्गं गतस्पृहतया निगृहीतसत्त्व—
मङ्गं प्रपन्नविभवात् सरजोभियोगम् ।
तस्मादमुष्य शुचिशान्तविनिर्मितेव,
संलक्ष्यते हरिविरञ्चिमयीव मूर्तिः ।। १६ ।।

विदूषकः —पोहेण वढ्ढावेसि । मारिसस्स वि दुल्लहम्मि बंधुम्मि सत्तं घरिणिम्मि रअं भोअणंमि तमं दीसइ, ता अहं वि बह्मविण्हुमहेसरमओ ज्जेव्व । [पृथुकेन वर्द्धापयसि । मादृशस्यापि दुर्लभे बन्धौ सत्त्वं गृहिण्यां रजः भोजने तमः दृश्यते; तदहमपि ब्रह्मविष्णुमहेश्वरमय एव ।]

सत्यभामा —अज्जउत्त, घरिणीं गेण्हिअच्चेअ पज्जंके उवविठ्ठो एसो ता बलिअं खु एदाणं णेहो हुविस्सदित्ति तक्केमि । [आर्यपुत्र, गृहिणीं गृहीत्वैव पर्यङ्के उपविष्टस्तद् बलीययान् खलु स्नेहः एतयोर्भविष्यतीति तर्कयामि ।]

कृष्णः –किमत्र वक्तव्यम् ।

षोडशसहस्रवनितासन्दानितमन्मथस्य मे सुतनो ।
तृप्तिर्न चेत् कथं स्यादेककलत्रस्य वा पुंसः ।। १७ ।।

क्वचिद्वनितालाघवमपि तरलयति पुरुषम् । तच्च यथा त्वमेव तुलसीं प्रत्यभ्यधाः -

पादे निपतसि कण्ठे विलम्बसे श्रयसि तस्य मूर्द्धानम् ।
संरम्भ एष यदि ते तुलसि कियानस्तु चेतनवतीनाम् ।। १८ ।। इति ।

श्रीदामा –(विलोक्य) अये प्रियवयस्यो मे देवकीसूनुः । (इति सरभसं पर्यङ्काद-वतीर्य कृष्णमालिङ्ग्य पर्यङ्के उपवेशयति)

वसुमती —एहि बहिणिए , मंचं चेअ आरोहेसु । [एहि भगिनिके, मञ्चमेवारोहस्व] (इति सत्या सहोपविशति । इतरे यथोचितमुपविशन्ति । श्रीकृष्णश्रीदामानौ मिथः कुशलानामयप्रश्नं कुरुतः ।)

विदूषकः —वअस्स, दाणिं वि किं कुशलं पुच्छीअदि । गलिवाइं अच्छिआइं वि पढमं व पल्लवंतवाइं अंगआइं, ता पज्जत्थलक्खणो वि एसो दीसइ । [वयस्य, इदानीमपि किं कुशलं पृच्छयते । गलितान्यक्षीणि प्रथमं त्रपावतामङ्गानि, तत् पर्यस्तलक्षण इव दृश्यते ।]

श्रीदामा —सारायण , किं ब्रूषे ।

पर्यस्तं दौर्गत्यं पर्यस्तो मे शरीरसादश्च ।
कृपया कंसद्विषतो भवोऽपि पर्यस्ततामेतु ।। १६ ।।

(वसुमतीं प्रति) ब्राह्मणि, वन्दस्व गोपीपतेः सत्यभामादेव्याश्च पादाब्जम् । (वसुमती तथा कर्तुमिच्छति । कृष्णसत्यभामे तां निवार्याभिवन्दामीति तस्याः पादयोः पततः ।)

वसुमती —अहिट्ठं लहेह । [अभीष्टं लभस्व] (इति तयोराशिषमभियोजयति)

श्रीदामा —कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य प्रतीहारी)

प्रतीहारी —अज्ज, णाए अणुजाणाहि । [आर्य, आज्ञानुजानीहि ।)

श्रीदामा —श्रेयस्वति, ममाज्ञया ब्रूहि गालवम् । 'अतिथिसपर्यासम्भारानुपाहर' । इति ।

प्रतीहारी —जं अज्जो आणवेदी [यदार्यआज्ञापयति] (निष्क्रान्ता) (ततः प्रविशति परार्ध्यवसनाभरणोऽनुजीविजनहस्तोपह्लीयमाणसपर्योपकरणो गालवः ।)

गालवः —(विलोक्य) कथं भगवतो वासुदेवस्य वरिवस्योपकारीण्याचार्येणाहृतान्युपकरणानि (विचिन्त्य) किममुष्य त्रिलोकीललाटतलललामभूतस्यानुरूपं संविधानकं भवेत् । अथवा यथोपहृतमाचार्याय निवेदयामि । (इति परिक्रामति)

विदूषकः —(गालवं विलोक्य) अम्हे ! एसो वि णडीणं पुट्ठवढ्ढाओ विअ पंफालिअ--हलहलो दीसइ । [अहो ! एषोऽपि नटीनां पृष्ठवाहक इव प्रस्फालित-कलकलो दृश्यते ।]

(गालवः श्रीदामकर्णे एवमेवं कथयति)

श्रीदामा— (सावज्ञम्) अलमिदानीं कर्णवर्तिनर्तनेन । तदुपकलयोपाहृतम् ।
(गालवः कृष्णश्रीदाम्नोरन्तराले संविधानकं स्थापयति ।)

श्रीदामा — **कतिपयपृथुकैरवापितोऽहं,**
त्रिभुवनवैभवपारगां विभूतिम् ।
इति कमलविलोचन प्रतीतः,
पुनरिदमङ्घ्रियुगे तवार्पयामि ॥ २० ॥

(इति कृष्णायानर्घ्यरत्नानि वसनानि चार्पयति । वसुमतीहस्तेन सत्यभामा-देव्यै च ।)

विदूषकः —(कनकचण्डं प्रति) ता फुडं कहं ण कहीअदि जो जस्स भरइ सो तस्स त्ति । अम्हारिसो ण परं भरइ अहं ण परेण भरिज्जइ । [तत् स्फुटं कथं न कथ्यते यो यस्य भरति स तस्य इति । अस्मादृशो न परं भरति अहं न परेण भर्ये ।]
(श्रीदामा सस्मितं विदूषकाय कनकचण्डाय च वसनभूणान्यर्पयति)

कृष्णः —वयस्य ,

स्निग्धजनवैभवोत्कर—विलोकनेनाञ्चितानन्दः ।
पूर्णशशिदर्शनैधितसुधोदधिं हन्त ह्रेपयति ॥ २१ ॥

तत् त्वद्वैभवांशविभागमाकाङ्क्षमाणे स्थान एवास्मिन् जनेऽयमभियोगः ।
(इति श्रीदामहस्तादावर्ज्य सर्वं प्रतीच्छति)

श्रीदामा —(स्वगतं सगद्गदम्)

श्रुतिसीमन्तसिन्दूरीकृतपादाब्जरेणुना ।
रम्यते देवदेवेन त्वयापीतरलोकवत् ॥ २२ ॥

(प्रकाशम्) युज्यते त्वयि सर्वोऽपि स्नेहक्रमापक्रमः ।

कृष्णः —किन्ते भूयः प्रियमुपकरोमि ।

श्रीदामा —वयस्य, इतः परमपि प्रियमस्ति । पश्य भवता -

आशैशवात् प्रणयभाजनतां गतोऽसौ,
नीतः कथापथमथास्य दरिद्रभावः ।
आरोपितो धनवतां धुरि सम्भ्रमेण,
लोकद्वयी व्यरचि चास्य करस्थितैव ॥ २३ ॥

तथापीदमस्तु – भरतवाक्यम् —

राज्ञां द्वन्द्वपरिक्षयेण भवतां राजन्वती मेदिनी,
काले वारिधरावलिः कलयतां धाराप्रसारादरम् ।
धर्म्ये कर्मणि सम्प्रति प्रकृतयो बद्धानुरागोत्करं,
शर्मोर्वी प्रभजन्तु यान्तु विलयं वैधक्रियादूषकाः ॥ २४ ॥

अपि च —

पायम्पायमिमां भजन्तु कवयो नैलिम्पवृत्तिं भुवि,
स्फीता 'दीक्षितसामराज' विदुषः सूक्तीः सुधास्यन्दिनीः ।
किञ्चाशावनिताकपोलफलके पाटीरपत्रावली—
लीलामञ्चतु कीर्तिरिन्दुजयिनीमानन्दरायप्रभोः ॥ २५ ॥

[इति निष्क्रान्ता; सर्वे]

इति पञ्चमोऽङ्कः ।

रसिका रसयन्त्विमां कृतिं मधुपा मञ्जुमिवाम्रमञ्जरीम् ।
कलयन्तु न जातु दूषणग्रहिला वेदमिवान्त्यजातयः ॥ २६ ॥

॥ इति दीक्षितनरहरिसूनु– दीक्षितसामराजकृतं
श्रीदामचरितं नाम नाटकं समाप्तम्[1] ॥

— ० —

१. शाके १६४५ वैशाखशुक्लप्रतिपदि रुधिरोद्गारिसंवत्सरे समाप्तोऽयमानन्दरायप्रभुगृहे ग्रन्थः । श्रीगोपालो जयति – क. ।

श्रीदामचरितस्थ - पद्यानुक्रमणिका

[अस्यामनुक्रमणिकायां क्रमेण प्रतिपद्यमाद्यपदं तदग्रेऽङ्कसंख्या तथा पद्यसंख्या विद्यते]

 